डाक पंजीयन क्र. : म.प्र./भोपाल/367/2024-26
आर.एन.आई. क्र. : 56428
टाइटिल कोड : MPHIN 09566
प्रेषण : प्रतिमाह दिनांक 7-8
वर्ष 37 अंक 02
(मानस समाचार/मानस भारती सहित)

प्रकाशन दिनांक 05 नवम्बर 2025
वर्ष 52 अंक 11
कार्तिक मास 2082
पृष्ठ संख्या 36
मूल्य 20/-

तुलसी मानस भारती

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश की अध्यात्म, संस्कृति और संस्कार पत्रिका

जय जय गिरिबर राज किसोरी।
जय महेस मुख चंद चकोरी।

तुलसी मानस प्रतिष्ठान एवं अभिव्यक्ति संस्थान के संयुक्त तत्वाधान में

सप्त दिवसीय श्रीमद्भागवतकथा

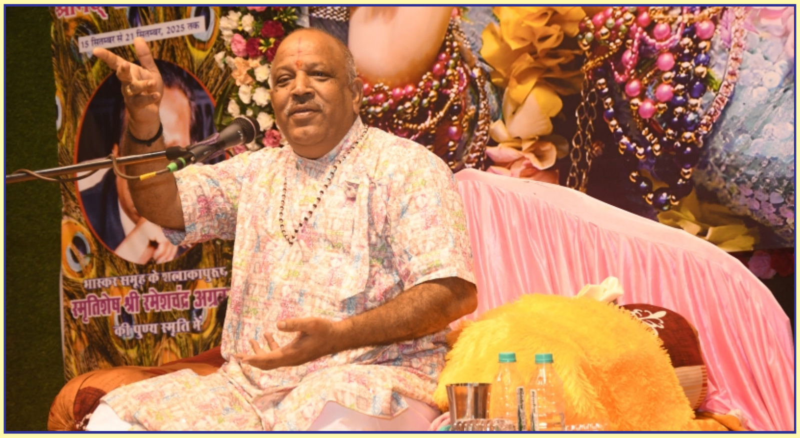

भागवताचार्य एवं मानस मर्मज्ञ परमश्रद्धेय श्री श्यामजी मनावत

श्री भागवत पुराण को श्रद्धासहित शिरोधार्य कर
कथा स्थल तक ले जाते हुए
श्रीमती एवं श्री अरूण गुप्ता

भागवताचार्य श्री मनावत जी के साथ कार्याध्यक्ष
श्री रघनंदन शर्मा, सचिव श्री कैलाश जोशी,
संपादक श्री देवेन्द्र कुमार रावत, श्री माधव सिंह दांगी

श्रीमद् भागवत जी की आरती करते हुए श्री रघुनंदन शर्मा, श्री एवं श्रीमती बंग
एवं अन्य सदस्यगण

पंचायत एवं समाज सेवा संचालनालय मध्यप्रदेश द्वारा समस्त पंचायतों एवं प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों के लिए, शिक्षा विभाग द्वारा समस्त महाविद्यालयों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/हाई स्कूलों, शिक्षा महाविद्यालयों, बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाओं, राज्य स्तरीय संस्थाओं तथा केन्द्रीय एवं जिला पुस्तकालयों के लिए, स्थानीय शासन विभाग द्वारा नगर निगमों एवं नगर पालिकाओं के लिए तथा आदिमजाति कल्याण विभाग द्वारा आदिवासी शालाओं के लिए स्वीकृत। उ.प्र. शासन द्वारा जिला पुस्तकालयों एवं वाचनालयों के लिए अनुमोदित।

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश की मासिक मुखपत्रिका

तुलसी मानस भारती

संस्थापक

पं. गोरेलाल शुक्ल

http://webmail.manasbhawanbhopal.com/

संपादक मंडल

रघुनंदन शर्मा

प्रकाशक

कार्याध्यक्ष, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

raghunandanbjp@gmail.com

प्रभुदयाल मिश्र

प्रधान संपादक

तुलसी मानस भारती

prabhu.d.mishra@gmail.com

राजेन्द्र शर्मा

संयोजक, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

sharmarajendra8june@gmail.com

कैलाश जोशी

सचिव,तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

kailashjoshi58@gmail.com

देवेन्द्र कुमार रावत

संपादक

सहसचिव, तुलसी मानस प्रतिष्ठान, भोपाल

dkmrawat@gmail.com

परामर्श

विजयदत्त श्रीधर, रमेश शर्मा, माधव सिंह दांगी

ग्राहक शुल्क : वार्षिक रु. 250.00, पंचवर्षीय रु.1100.00, आजीवन रु. 2500.00 इस अंक का रु.20.00

विदेश में : फिजी आयरलैण्ड, मॉरीशस व अन्यत्र समुद्री डाक से (भारतीय रुपये में) वार्षिक रु. 1250.00, पंचवर्षीय रु. 5000.00 आजीवन रु. 12500.00, हवाई डाक से वार्षिक रु. 1500.00 पंचवर्षीय रु. 6000.00 आजीवन रु. 15000.00

पंजाब नेशनल बैंक खाता क्र. 1276000100137956 आईएफसी कोड PUNBO127600

सम्पर्क : तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश, मानस भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल–462002, दूरभाष : 0755–2661196, 2660010

tulsimanasbharati@gmail.com *www.manasbhawanbhopal.com*

अनुक्रमणिका

निर्वचन

भगवत् साक्षात्कार — प्रभुदयाल मिश्र — 03

आलेख

बरनाश्राम निज निज धरम — देवेन्द्र कुमार रावत — 05

दुर्लभ शोध सामग्री

तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली — लोकनाथ द्विवेदी — 09

विचारात्मक

पद्मपत्रमिवांभसा — विनीत त्रिपाठी — 13

शोधात्मक

कृष्णसखी द्रौपदी — डॉ. हरप्रसाद शर्मा — 14

धर्म क्षेत्रे कुरु क्षेत्रे — सुभाषचंद्र जोशी — 25

समालोचना

रामचरितमानस के कतिपय प्रसंग : आधुनिक बोध — एन.डी. सोनी — 27

आलेख

एहि तन कर फल विषय न भाई — डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त — 29

प्रतिष्ठान समाचार — 33

कालो ह्यायं निरवधिर्विपुला च पृथिवी।
भुवि धर्मश्च धर्मज्ञ तस्मान्नात्यन्तमाचरेत्।।

महाभारत उद्योग पर्व 33/46

हे धर्मज्ञ (युधिष्ठिर)! यह काल असीम है और पृथ्वी अपार है। धरती पर धर्म भी विद्यमान है। इसलिए मनुष्य को किसी भी बात में अत्यन्तता (अत्यधिक कठोरता या अतिरेक) से नहीं चलना चाहिए।

निर्वचन्

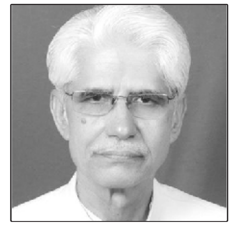

भगवत् साक्षात्कार

मैंने कृत्रिम मेधा पटल (ए आइ) से पूछा कि हे 'सर्वज्ञ!' आपके ज्ञान में भगवत् साक्षात्कार करने वाले व्यक्तियों के नाम हों तो प्रकट करें। 'महाज्ञानी' ने मुझे निम्न सूची प्रदान की आदि शंकराचार्य, संत ज्ञानेश्वर, श्री रामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि। आगे यह भी कहा –इनके अलावा भी कई संत और योगी हुए हैं, जिनके जीवन को भगवत् साक्षात्कार का प्रमाण माना जाता है। इनमें कबीरदास, गुरु नानक, मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु और तुकाराम जैसे नाम शामिल हैं।'

इस पर मैंने आगे पूछा कि इस सूची में तुलसीदास का नाम मैं नहीं देख रहा हूँ तब 'प्रज्ञावान' ने कहा –

'इसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ। वास्तव में, गोस्वामी तुलसीदास जी का नाम भी उन महान संतों में सर्वोपरि है, जिन्हें भगवत् साक्षात्कार हुआ था। उनका जीवन और उनका महाकाव्य 'श्रीरामचरित मानस' इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण हैं।

माना जाता है कि उन्हें अपने आराध्य, भगवान श्रीराम का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था। उन्हें चित्रकूट में भगवान राम ने स्वयं आकर दर्शन दिए थे और उनके मस्तक पर तिलक लगाया था। इसके अलावा, हनुमान जी के आशीर्वाद से भी उन्हें कई बार प्रभु की उपस्थिति का अनुभव हुआ।'

यहाँ ईश्वर के 'निर्गुण' और सगुण स्वरूप पर विचार करते हुए आगे यह भी पूछा जा सकता है कि यह ईश्वर का यह साक्षात्कार सगुण रूप का है अथवा निर्गुण का ? इस संबंध में मुझे वर्तमान समय के विद्वत् वरेण्य संत श्री राजेंद्रदास देवाचार्य का निम्न कथन स्मरण आता है –

'मध्यकाल के भक्त कवियों को हिन्दी साहित्य समीक्षकों ने निर्गुण और सगुण भक्ति में बांटकर भारतीय मेधा की अभेद–अखंड–धारा को ही विभक्त कर दिया है। वास्तव में हमारी ज्ञान परंपरा में निर्गुण का आशय गुणत्रय –सत, रज और तम के परे होने वाले परमात्मा से है। इसी तरह सगुण रूप "असंख्येय गुण–गण–कल्याण –निलय निखिल हेय प्रत्यनीक" ईश्वर है। इस प्रकार कबीर, सूर, तुलसी, मलूकदास, रविदास आदि कवियों के इष्ट राम–कृष्ण सगुण और निर्गुण दोनों है।'

विश्व ज्ञान की अखंड परंपरा के आदि श्रोत ऋग्वेद से ही प्रकट ईश्वर की शोध में आर्तता, जिज्ञासा, अर्थार्थ और ज्ञान पिपासा चार कारण प्रकट रहे हैं। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को इसे इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म

करने वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी – ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मुझ को भजते हैं।।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मे प्रियः।।

उनमें नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित अनन्य प्रेमभक्ति वाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्व से जानने वाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे विशेष प्रिय है ।।

इस प्रकार भारत में भगवान की प्राप्ति में भक्ति और ज्ञान का जहां अद्भुत समन्वय हुआ है वहीं इन धाराओं का वैश्विक परिप्रेक्ष्य में गहन शोध और विवेचन भी हुआ है। यहाँ भगवान को भक्त उसके प्रति समर्पण से अधिक प्राणी मात्र में भगवत्ता के साक्षात्कार के कारण उसे विशेषकर पहचानता है। अतः वेद जिसे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छान्दोग्य उपनिषद् – ३/१४) कहते हैं उसे ही गोस्वामी तुलसीदास भगवान राम से हनुमान जी को जीवन आदर्श के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं –

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।
किष्किन्धाकाण्ड

गोस्वामी जी के इस परमोत्तम बोध में हम गीता के नवम अध्याय के निम्न २२वें श्लोक का भाव साम्य स्पष्टता से देख सकते हैं–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य– निरन्तर मेरा चिन्तन करने वालों का योग (पूर्ति) और क्षेम (सुरक्षा) मैं स्वयं करता हूँ।

इसे भक्तों के प्रपत्ति उपासना मार्ग की दृष्टि से देखें तो वे सनातन पुरुषार्थ चतुष्टय के भी परे सगुण साधना के निम्न 6 सोपानों पर चलकर भगवान् की नित्य लीला के साक्षी बनते हैं –

1. आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः
भगवान् को प्रिय कार्य करने का संकल्प।

2. प्रतिकूल्यस्य वर्जनम्
भगवान् के अप्रसन्नकारी कार्यों का त्याग।

3. रक्षिष्यति इति विश्वासः
भगवान् ही निश्चित रूप से रक्षा करेंगे।

4. गोप्तृत्व–वरणम्
ईश्वर को ही एकमात्र रक्षक व पालक मानना।

5. आत्मनिक्षेपः–ईश्वर प्रणिधानता

6. कार्पण्यम्
दीनता, अपनी असहायता का बोध।

वस्तुतः सगुण ईश्वर की इस उपासना में भक्तों द्वारा भगवत साक्षात्कार की सीमा और संख्या का प्रश्न नहीं उठता। समर्पित भक्त के लिए तो भगवान की नित्य सन्निधि उसके भगवत् साक्षात्कार का सार्वभौम प्रमाण ही है।

प्रभुदयाल मिश्र
प्रधान संपादक
8839319901

आलेख

बरनाश्रम निज निज धरम

देवेन्द्र कुमार रावत

श्रीरामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में वर्णन आया है कि रामराज्य में दैहिक, देविक और भौतिक ताप नहीं व्यापते थे तथा प्रकृति भी सदा अनुकूल रहती थी। त्रेतायुग की इन अनुकूलताओं में जहाँ भगवान श्रीराम के प्रभाव का वर्णन आया हैं तो मानस रचनाकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसके साथ साथ उस समय भक्ति के प्रभाव से मनुष्यों के स्वभाव में आये परिवर्तन का भी विशेष उल्लेख किया हैं :–

बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिभय सोक न रोग।

अर्थात् सभी अपने अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर रहते हुए सदा वेदमार्ग पर चलते हैं, और सुख पाते हैं। उन्हें न तो किसी बात का भय है न शोक है, और न ही कोई रोग ही सताता है। रामराज्य की उपरोक्त भौतिक और प्राकृतिक अनुकूलताओं को यदि हम वर्तमान संदर्भ में देखें तो हम इसे त्रेतायुग की ही एक आदर्श राज्य व्यवस्था मानकर चलेंगें। लेकिन हमारी सनातन संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने अपने आध्यात्मिक अनुसंधान की प्रयोगशाला में सिद्ध किया है कि त्रेतायुग में वर्णित भौतिक और प्राकृतिक अनुकूलताओं को अध्यात्म पथ पर चलकर किसी भी युग में सहजता से प्राप्त किया जा सकता हैं। जैसा कि त्रेतायुग में भी वर्णन आया है –

ससि संपन्न सदा रह धरनी।
त्रेताभई कृतजुग के करनी।

अर्थात् त्रेतायुग में धरती सदा ही हरी भरी रहती है जैसे त्रेता में सतयुग की करनी स्थित हो गई थी। वही भक्ति के प्रभाव से कलियुग युग में भी काल प्रभाव के परिवर्तन का वर्णन आया हैं। मानस रचनाकार लिखते हैं –

कल जुग सम जुग आन नहिं जो नर कर विस्वास।
गाइ रामगुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।।

अर्थात् यदि मनुष्य विश्वास करें तो कलियुग के समान कोई दूसरा युग नहीं हैं। क्योंकि इस युग में श्रीरामजी के निर्मल गुण समूहों को गा–गाकर मनुष्य बिना ही परिश्रम के संसार रूपी समुद्र से तर जाता हैं।

तब प्रश्न उपस्थित है कि, मानव समाज में रहते हुए भी हम कैसे अपने अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सुखी, सम्पन्न जीवन व्यतीत कर सकते हैं। इसके लिए भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि मैंने गुण कर्म का विभाजन कर वर्ण व्यवस्था की रचना की है श्रीमद्भगवत गीता में इसका वर्णन आया हैं :–

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।
तस्य कर्तृतारंमपि मां विद्यकर्तारमव्यम।।

अर्थात् प्रकृति तीन गुणों और उनसे सम्बद्ध कर्मानुसार मेरे द्वारा मानव समाज के चार विभाग रचे गये हैं यद्यपि में इस व्यवस्था का द्रष्टा हूँ कि तुम यह जान लो कि मैं इतने पर भी अव्यय अकर्ता हूँ। भगवान श्री कृष्ण ने मानव समाज को सुव्यवस्थित रूप चलने देने के लिये ही चार विभागों की रचना तीन गुणों सत, रज और तम को मिलाकर की हैं। लेकिन यह हमारी अज्ञानता ही है कि हम सामाजिक न्याय और समानता का सही अर्थ न समझ पाने से ईश्वरकृत वर्ण व्यवस्था को मिटाने पर तुले हुये हैं । ऐसा करके जहाँ हम कर्म सिद्धान्त की अवहेलना करते हैं तो पाप से न डरते हुये विभिन्न योनियों में जीवों को संस्सृति कलेश से होने बाले कष्टों को भी अनदेखा करते हैं। हम मनुष्यों को यह भय न होने से ही वर्तमान विश्व में आतंक, हिंसा और अराजकता दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। जिसे गुणकर्म विभाजन अनुसार नियंत्रित करने का प्रयास किया गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने इन चार वर्णों के विभाजन में सतोगुण प्रधान ब्राह्मण, रजोगुण प्रधान क्षत्रिय, रजोगुण और तमोगुण के मिश्रित प्रधान वैश्य तथा तमोगुणी शूद्रों को अपने अपने धर्म और कर्म का संविधान अनुसार कर्तव्य निश्चित किये हैं। जिसमें न कोई उच्च है न निम्न है किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि वर्णानुसार जो देह प्राप्त हुई है वह अपरिवर्तनीय नहीं है। दूसरे यह भी संभव नही है कि सभी सतोगुण में स्थित हो जायें क्योंकि जप, तप, स्वाध्याय, अपरिग्रह साधना का पालन कर पाना सभी के लिए सहज भी नहीं है, यदि ऐसा संभव हो भी जाये तो समाज की व्यवस्था भी चरमरा जायेगी। अतः किसी भी दृष्टि से सभी को आंतरिक गुणों की समानता न होने के सिद्धान्तानुसार एक समान नहीं माना जा सकता है –

हाँ सभी को सम्मान सहित विकास के समान अवसर मिलना चाहिए लेकिन प्रकृति के इन तीन गुणों के प्रभाव की अवहेलना कर क्या हम संसार में सुव्यवस्था बनाये रख सकते हैं –

इस तरह से वर्ण व्यवस्था श्रेष्ठत्व की ओर ले जाने का चतुवर्णीय सोपान है जो मानव देह की दुर्लभता और मनुष्य की उर्ध्वाधर गति का परम लक्ष्य भी है।

श्रीमद्भगवतगीता में भगवान श्री कृष्ण कहते है कि जो मुझे भजता है वह मेरा भक्त इस वर्ण व्यवस्था से परे रहता हुआ मुझे प्राप्त कर लेता है। श्रीरामचरित मानस में इसी सन्दर्भ में वर्णन आया है कि –

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू।
गहहि न पाप पूनु गुन दोषु।।

अर्थात् भगवान श्री राम यद्यपि सम हैं – उनमें न राग है, न रोष है, और न वे किसी का पाप–पुण्य गुण दोष ही ग्रहण करते हैं फिर भी वे भक्त

को प्रेम से गले लगा लेते हैं और अभक्त को तार देते हैं –

यहाँ इसका यह आशय भी है कि इस संसार में रहते हुए भी श्रुतिमार्ग पर चलता हुआ मनुष्य सहजता से ही सांसारिकता से मुक्त हो जाता है। इसके विपरीत कर्मफल सिद्धान्त के अनुसार हम स्वच्छंदतावादी होने से अधोगति से अधोगति को भी प्राप्त होते हैं, तो यही संस्सृति क्लेश है। तब हम ईश्वर की सर्वव्यापकता को नहीं समझ पाते हैं। फिर जब हम प्रारब्ध को झुठला कर वर्तमान को बिगाड़ रहे हैं तब आगे क्या गति प्राप्त होगी इसे कौन जान सकता है। वही शास्त्रों में वर्णित है कि द्विज को जप, तप, स्वाध्याय और तपस्या से सद्‌गति प्राप्त होती है, क्षत्रियों को धर्म रक्षार्थ त्याग करने से, वैश्यों द्वारा दान देने और शूद्रों को सेवा करने से भी सद्‌गति प्राप्त होती है। यहाँ सेवा धर्म को निम्न मानकर चलने वालों के लिए तो भगवान श्री राम ने श्री हनुमान से संवाद करते हुए स्पष्ट किया है कि सेवा धर्म सबसे उच्च है वे कहते है –

जो अनन्य जाके असि मति न टरै हनुमंत
मैं सेवक सचराचर रुप स्वामी भगवंत।

अर्थात् जिसकी मति में ऐसी दृढ़ता सदा बनी रहती है कि यह सम्पूर्ण जगत ही मेरे स्वामी का रुप है और में इसका सेवक हूँ वह ही मुझे सर्वाधिक प्रिय है पर वे जहाँ सेवक की अनन्यता की बात कहते है तो सेवकों को अपने समान भी बना लेते हैं। वर्णन आया है :–

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आप समान।
तुलसी कहु न राम से साहब सील निधान।।

अर्थात् सभी वानर तो वृक्ष पर है और भगवान श्रीराम उसी वृक्ष के नीचे बैठे हुए है वे ऐसे स्वामी है जो अपने सेवकों को अपने समान मानते हैं अतः वर्ण व्यवस्था में न कोई उच्च है न निम्न। केवल गुण धर्मानुसार कार्य विभाजन है। इस वर्ण व्यवस्था में कार्य विभाजन का एक लाभ यह भी है कि परंपरागत कार्यकुशलता से कार्यों में दक्षता बनी रहती है। बेरोजगारी नहीं होती और समाज की आवश्यकता की पूर्ती होती रहती है अतः स्पष्ट है, कि वर्ण व्यवस्था ही मानव समाज की जहाँ भौतिक आवश्यकताओं कि पूर्ति का साधन है तो गुण धर्मों के अनुसार कार्य विभाजन के साथ साथ कर्तव्य निर्वाहन का भक्ति पथ भी है सो इसी तरह मनुस्मृति के अनुसार मनुष्यों की 100 वर्ष कि आयु को लेकर 4 आश्रम बनाये गए है, जन्म से 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य, 25 से 50 वर्ष तक गृहस्थाश्रम, 50 से 75 वानप्रस्थ और 75 से 100 वर्ष सन्यास। मनुष्य की आयु के अनुसार इन आश्रमों का विभाजन के अनुसार चलने पर भी संसार में रहते हुए हम भौतिक सुखों एवं उपलब्धियों के साथ साथ मानव जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लेते हैं। अतः स्पष्ट है कि भगवान की भक्ति के लिए सभी को गृह त्याग कर साधक, तपस्वी होना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह ज्ञान मार्ग सरल नहीं है, मानस में वर्णन आया है –

कहत कठिन समुझत कठिन
साधन कठिन बिबेक।
होई गुनाक्षर न्याय जौं
पुनि प्रत्यूह अनेक।

अर्थात् ज्ञान कहने में कठिन, समझने में कठिन और साधन में भी कठिन है। यदि संयोगवश कदाचित् यह ज्ञान हो भी जाये तो फिर उसे बचाये रखने में अनेकों विघ्न हैं। तब ईश्वर प्राप्ति के लिए आश्रम व्यवस्था में कर्म मार्ग भी सहायक है। वर्तमान में इस आश्रम व्यवस्था के विपरीत हमारा युवा वर्ग 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का

पालन न कर पाने के कारण भटक रहा है। वही संतान के पालन पोषण के लिए गृहस्थाश्रम जैसा कोई आश्रम नहीं है किन्तु गृहस्थाश्रम में मर्यादाओं की सीमा रेखाओं का पालन न होने से न केवल दम्पति वल्कि संतान भी संस्कार हीन हो रही हैं ।

जबकि बालमन पर पड़े संस्कारों का प्रभाव जीवन भर रहता है अतः हमें यह गंभीरता से समझना होगा कि गृहस्थाश्रम के सुखोपभोग में यदि हम मर्यादित जीवन जी रहे है तो ही दी गई शिक्षा असर कारक हो सकती है। अन्यथा केवल पुस्तकीय ज्ञान से आचरण विहीनता पर नियंत्रण कर पाना संभव नहीं है। गृहस्थाश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम का समय 50 से 75 वर्ष है। इसका अर्थ है कि इस अवधि में मनुष्य अपनी आयु सुनिश्चित होने से अगले जन्म कि तैयारी कैसे करें। श्रीरामचरित मानस से इस सन्दर्भ में वर्णन भी आया है –

रस रस सूख सरित सर पानी,
ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।।

अर्थात् जैसे शरद ऋतु आते आते क्रमशः वर्षा का जल सूखता जाता है, ठीक बैसे ही ज्ञानी ममता का त्याग धीरे–धीरे करते जाते हैं। गृहस्थाश्रम से वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करने का यही आशय है कि वर्णाश्रमानुसार चलते हुए हम 75 से 100 वर्ष की अवधि जो सन्याश्रम की है इस आयु में ही हम जीवन लक्ष्य की पूर्णता प्राप्त कर लें।

अतः वर्णाश्रम व्यवस्था संसार में सुखी, स्वस्थ और संपन्न जीवन जीते हुए भी सद्गति प्राप्ति का सबसे सुन्दर और सहज भक्ति मार्ग है।

महेंद्रा स्कावयर्स, फ्लेट नं. 107 बावडिया कला भोपाल
मो. नं. 9893119507

स्नातकोत्तर भौतिक विज्ञान में मेघावी छात्र को पुरस्कार

श्री अशोक कुमार धमेनियाँ वरिष्ठ साहित्यकार और कवि पद्मनाभ नगर भोपाल द्वारा स्थापित ''अशोक धमेनियाँ पुरस्कार'' के नाम से 2 लाख रूपये की जमा राशि के ब्याज से रु. ग्यारह हजार का वार्षिक सम्मान बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर परीक्षा भौतिक विज्ञान में उर्त्तीण मेघावी छात्र के सम्मान में स्थापित किया गया है। यह सम्मान तुलसी मानस प्रतिष्ठान के वार्षिक श्रृखंला समारोह के अंतर्गत तुलसी जयंती समारोह में प्रदान किया जाएगा।

सचिव
कैलाश जोशी

तुलसीदास जी की धर्मपत्नी रत्नावली

पुण्यश्लोक लोकनाथ द्विवेदी 'सिलहकारी'

श्री नाभादास जी के भक्तमाल के प्रामाणिक टीकाकार श्री प्रियादास जी ने भक्ति रस बोधिनी में गोस्वामी तुलसीदास जी का जिस गुणवती धर्मपत्नी के एक ही वाक्य से उनके अमर रामभक्त बन जाने की घटना का उल्लेख किया है, उसका नाम प्रबल जन श्रुति के आधार पर रत्नावलि पाया जाता है जो परंपरा से दीनबन्धु पाठक की पुत्र कही जाती हैं।

तुलसी–साहित्य के ख्याति–प्राप्त अन्वेषक स्व. सर जार्ज ग्रियर्सन (तुलसी ग्रंथावली खंड तीन पृ. 27), श्री अवधवासी लाला सीताराम बी.ए. (अयोध्याकांड प्रस्तावना पृ०4), पंडित राम रामचन्द्र शुक्ल. ग्र. 03 पृष्ठ 26), श्री मिश्र बन्धु (हिन्दी नव रत्न पृष्ठ 3), श्री रेवेरेंड एफ. ई. की (ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिटरेचर पृष्ठ 51), 10 सूर्यकान्त त्रिपाठी एम.ए. (हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक एतिहास पृष्ठ 224), और पंडित रामनरेश त्रिपाठी (तुलसीदास पौर उनकी कविता पृ. 66 और 135, 130) आदि साहित्य के इतिहासकारों के अतिरिक श्री सेवादास आदि की भक्तमाल एवं पंडित रामेश्वर मटू आदि टीकाकारों ने तुलसीदास जी की पत्नी रत्नावली और उनके स्वसुर दीनबन्धु पाठक के नामों का उल्लेख किया है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका तथा वर्तमान पाठ्य ग्रन्थों में जहां तुलसीदास जी का जीवन वृत्त दिया है, उन की पत्नी रत्नावली का उल्लेख किया गया है।

रत्नावली–विषयक सामग्री की खोज के हेतु प्रयत्न करने पर सोरों में निम्न–लिखित ग्रन्थ प्राप्त होते है– 1. श्री सूकर क्षेत्र महात्म्य 2. रत्नावली लघु दोहा संग्रह और 3. रत्नावली (जीवनी) तथा 4. दोहा रत्नावली।

श्री सूकर–क्षेत्र–माहात्म्य के रचयिता कृष्णदास नंददास जो अष्ट छाप वालों के पुत्र थे, जो गोस्वामी तुलसीदास जी के भ्राता थे। इसकी रचना संवत 1670 वि. में हुई थी। स्वयं कृष्णदास ने उसके विषय मे कहा है–

सोरह सौ सत्तर प्रमित संवतु सित दल माह ।
कृष्ण दास पूरन करयो क्षेत्र महात्म बराह।।

इसके प्रारम्भ में ही मंगलाचरण के अनंतर अपने पूज्य गुरु जनों की भी बंदना की गई है। तुलसीदास और रत्नावली के सम्बन्ध के चार दोहे उद्धृत किए जाते है :–

बन्दहुँ तुलसीदास, पितु बड़ भ्राता पद जलज।
जिन निज बुद्धि विलास, रामवरित मानस रच्यो।
सानुज श्री नंददास, पितु की बन्दउँ चरन रज।
कीनो सुजस प्रकास, रास पंच अध्यायि भनि।।
वन्दउँ कृपा निकेत, पितु–गुरु श्री नरसिंह पद ।
वन्दउँ शिष्य समेत, वल्लभ आचारज सुपद।।
वन्दऊँ कमला मात, वन्दहुँ पद रत्नावली।
जासु चरन जलजातु सुमिरि लहहिं तिय सुर थली।।
सुकुल वंश द्विज मूल, पितरन पद सरसिज नमहुँ।
रहहि सदा अनुकूल, कृष्णदास नित वंस गनि।।

(सूकर क्षेत्र माहात्म्य)

रत्नावली (जीवनी) सोरों निवासी कवि मुरली धर चतुर्वेदी कृत संवत् 1821 वि. की रचना है। सोरों में पंडित गोविन्द बल्लभ मटु औदीच्य के पास इसकी एक प्रति है, जिसे मुरलीधर के शिष्य रामवल्लभ मिश्र ने सोरों मे संवत 1864 में लिखी थी। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है –

इति श्री रत्नावली सम्पूर्णम् लिखितम श्री मुरलीधर चतुर्वेदी शिष्येन रामवल्लभ मिश्रेन सोरों मध्ये संवत 1864 मार्गशीर्ष मासे शुक्ल पक्षे 6 शनिवासरे कृष्णाय नमः शुभम्।

इसमें गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी रत्नावली का जीवन–चरित परंपरागत जनश्रुति के आधार पर किया गया है। स्वयं मुरलीधर लिखते है –

नव कर वसु भू विक्रमीय, सूकर तीरथ वन्दनीय।
साध्वी रत्नावलि कहानि,
विरचन मुख जस परी जानि।
दुज मुरलीधर चतुर वेद,
लिखि प्रगटी जग हित सभेद।

इसमें तुलसीदास और रत्नावली के जन्म, उनके विद्याध्ययन, विवाह, वैवाहिक जीवन, तुलसी के वैराग्य और रत्नावली के वियोग के प्रसंग है। संक्षेप में इसका वर्णन विषय निम्नलिखित है ।

गंगा भागीरथी के किनारे सोरों जिला एटा के निवासी पंड़ित आत्माराम शुक्ल सनाढ्य के पुत्र गोस्वामी तुलसीदास अपने काका जीवाराम के पुत्र नंददास के साथ सोरों में स्मार्त वैष्णव पंडित नृसिंह जी के यहां पढ़ते थे। तुलसी की माता का नाम हुलसी था। आत्माराम और हुलसी का परलोकवास तुलसीदास जी के बचपन ही में ही हो गया था। तुलसी की दादी उस समय जीवित थीं। उन्होंने भिक्षावृत्ति से उनका पालन किया। पहले नंददास और चन्द्रहास गाँव रामपुर में रहते थे।

रत्नावली सौरों के निकट बहने वाली गंगा की धारा के पश्चिम की ओर के वदरिया नामक ग्राम के दीनबन्धु पाठक की पुत्री थी। दीनबन्धु ने रत्नावली को पढ़ा–लिखा कर विदुषी बनाया था। वह नृसिंह जी की पाठशाला के स्वस्थ सुन्दर होनहार सजातीय विद्यार्थी तुलसीदास की प्रतिभा और रूप आदि पर रीझ कर दीनबन्धु ने रत्नावली का विवाह तुलसीदास जी के साथ कर दिया। दादी पोत्र वधू के रूप और गुणों पर प्रसन्न हुई पर थोड़े दिन पीछे सुरलोक सिधारी। दम्पत्ति आनंद में रहते थे। तुलसीदास पौराणिक वृत्ति से व्यवहार चलाते थे। इनके तारा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ पर अल्पायु ही में काल कवलित हो गया।

तुलसीदास जी रत्नावली पर अत्यन्त आसक्त थे। उसे नेहर पिता मातादि से मिलने भी नहीं जाने देते थे। एक बार तुलसीदास जी बाहर कथा

बांचने दस दिन को गए थे। इस समय श्रावण के रक्षा बंधन को रत्नावली नैहर गईं थीं। लौटने पर तुलसीदास ने जब रत्नावली को घर न पाया तो बेचैन हो उठे। भादों की घनी अधेरी रात में बरसते पानी में वे गंगा की धार को शव पर पार कर पत्नी के पास जा पहुंचे और रत्नावली को जा जगाया। उसने उस विकट भयंकर काली रजनी में गंगा की धार पार कर नारी पर आसक्त तुलसीदास के दुःसाहस पर और उनकी आसक्ति पर कटाक्ष किया और विषयानंद की अपेक्षा ब्रह्मानंद मे लीन होने का व्यंग किया। प्रेमी तुलसीदास को आघात लगा और उनका अथाह प्रेम परमात्मा की ओर झुक पड़ा । वे शीघ्र ही सर्वस्व त्याग वैराग्यवान हो, उसे सोता छोड़ काशी चले गए। रत्नावली उनके वियोग मे दुखी हो अपना समय स्त्रियों को उपदेश आदि करने और परोपकार करने मे व्यतीत करने लगी। सं. 1651 वि. क्षेत्र कृष्ण अमावास्या के दिन रत्नावली स्वर्ग सिधारी ।

रत्नावली लघु दोहा संग्रह : यह तुलसीदास की पत्नी रत्नावली चरित 111 दोहों का संग्रह है। इसकी प्रति सोरों जिला एटा निवासी पंडित प्यारेलाल जी के यहाँ से पं. गोविन्दवल्लभ मटू को प्राप्त हुई है, जो ईसुरनाथ पंडित सोरों निवासी ने सं. 1875 वि० मे लिखी थी। इसकी पुष्पिका उस प्रकार है :–

इति श्री रत्नावली लघु दोहा संग्रह संपूरनम, लिखितं ईसुरनाथ पंडित सोरों जी मिती माघ सुदी तेरसि 13 सोमवार संवत 1875 में।

इसमे रत्नावली ने तुलसीदास जी के वैराग्य लेने पर वियोग सम्बन्धी दोहों के साथ साथ कुछ उपदेशात्मक दोहे भी कहे हैं। तुलसीदास जी को सम्बोधन कर रत्नावलि लिखती है :–

हों न नाथ अपराधिनी तऊ छिमा करि देउ।
चरनन दासी जानि निज वेगि मोरि सुधि लेउ।।
दीनबन्धु कर घर पली, दीनबन्धु कर छांह।
तोउ भई हों दीन अति, पति त्यागी मो बाँह।।

निम्न लिखित दोहे में सोरों में रह कर ही राम–भक्ति करने का तुलसीदास जी से आग्रह किया गया है–

तीरथ आदि वराह जै,
तीरथ सुरसरि धार।
याही तीरथ आय पिय,
भजहु जगत करतार।।
प्रभु बराह-पद पूत महि,
जनम मही पुन एहि।
सुरसरि-तट महि त्यागि
अस, गए धाम पिय केहि ।।
सवनि तीरथन रमि रह्यो,
राम अनेकन रूप।
यहीं नाथ आओ चले,
ध्यावो त्रिभुवन भूप ।

अपने को तुलसीदास की पत्नी होते हुए भी शोकमग्ना देख उन्होंने लिखा है :

जासु दलहि लहि हरखि हिय,
हरत भगत भव रोग ।
तासु दास पद दासि ह्वे,
रतन लहति कत सोग।।

यह प्रति प्रामाणिक जान पड़ती है। सौरों की सामग्री की जाँच कड़ी तौर से करने और उसके विरुद्ध निर्णय देने में उतावले डाक्टर माताप्रसाद गुप्त एम. ए. लिखते है :–

रत्नावली लघु दोहा संग्रह के सम्बन्ध में अवश्य हमे कोई सन्देह जनक बात नहीं ज्ञात होती पर सोरों में प्राप्त हुई प्रत्येक अन्य सामग्री के सन्देहातीत न होने के कारण यह लघु दोहा संग्रह

के सम्बन्ध में भी यदि किसी को पर्याप्त विश्वास न हो तो आश्चर्य नहीं (तुलसीदास पृष्ठ 87)

कम से कम इस सामग्री पर से हमे सोरों में रत्नावली का होना तो विदित हो ही जाता है। इधर अन्त में अवध वासी लाला सीताराम बी.ए. का इस विषय पर राजापुर की जन–श्रुति के आधार पर निम्न लिखित, मत, जिसका उल्लेख बाँदा गजेटियर में मी है, विचारणीय है :–

'उनका (तुलसीदास जी का) विवाह राजापुर के ठीक सामने जमुना के उत्तर तट पर महेवा गाँव में दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली के साथ हुआ था। पर जब उनकी ससुराल के कुल में कोई नहीं बचा, यह पता चलता है कि पहले इस गाँव में मथुरिया ब्राह्मण रहते थे और दीनबन्धु पाठक भी उसी कुल के थे। उससे भी उनके सनाढ्य होने की पुष्टि होती है।

(अयोध्याकांड तु. जी. चरित)

परन्तु गजेटियर के अनुसार जनश्रुति राजापुर को गोस्वामी तुलसीदास द्वारा वैराग्य ले लेने के बाद बसाया हुआ मानती है। फिर इनके मत का आधार कुछ भी नहीं है, जब कि वदरिया के विषय में अनेक लिखित प्रमाणों के अतिरिक्त जन–श्रुति भी और राजापुर की जनश्रुति भी वैराग्य के पूर्व तुलसी दास जी का सोरों–निवास तथा पीछे सोरों से राजापुर जाना स्वीकार करती है।

सौजन्य : हरिविष्णु अवस्थी, अध्यक्ष श्री वीरेंद्र केशव साहित्य परिषद,
किले का मैदान टीकमगढ़

(शोधकार्य तत्कालीन ओरछा नरेश महाराज वीरसिंह जूदेव की इच्छा और आदेश से किए जाने का साक्ष्य)

प्रेषक : लोकनाथ द्विवेदी सिलहकारी
साहित्याचार्य, टीकमगढ़ (सी.आई.),
दिनांक 10–2–45

सेवा में,
श्रद्धेय श्रीजू देव, टीकमगढ!
श्रीमन्
मंगलमय भगवान् मुरली मनोहर श्रीमान् को सदा सर्व सुख सम्पन्न रखें!
श्रीमान् के दर्शनों की अत्यन्त तीव्र उत्कण्ठा से विवश होकर कुछ समय प्रदान करने की विनम्र प्रार्थना करता हूँ।...... तुलसीदास–विषयक कार्य के हेतु तन मन से अध्ययन और मनन में संलग्न हूँ, पर लेखन कार्य श्रीमान के आदेश और आशीर्वाद की प्राप्ति के पूर्व प्रारम्भ नहीं कर सकता। अब बिलम्ब होने में मुझे लज्जा सी लगती है। आशा है, थोड़ा समय प्रदान करने की अविलम्ब कृपा करेगे। कुछ अंनूठे और अछूके साहित्यक निबन्ध श्रीमान् की प्रसन्नता के हेतु सुनाने को भी आकांक्षा है। विशेष विनय!

श्रीमान् का स्नेह भाजन, अकिञ्चन आज्ञाकारी. लोकनाथ सिलहकारी

पद्मपत्रमिवांभसा

विनीत त्रिपाठी

कैसा होता है कमल के बीच पानी का पत्ता? ये बात वही जान सकता है जिसने पानी के पत्ते को कमल के बीच देखा हो। और देखना भी विहंगावलोकन वाला दृष्टि पात नहीं, सिंहावलोकन की मर्मभेदी दृष्टि। इस दृष्टि के बिना सारी उपमाएँ व्यर्थ हैं और सारे काव्य नीरस।

कमल का पत्ता तालाब में सतह पर ऐसा फैला रहता है जैसे उसका कोई अलग अस्तित्व ही न हो। वहीं अदृश्य भाव से आराम फरमाता हुआ कमल के सौंदर्य को पोषण प्रदान करता रहता है। लेकिन पानी में होकर और उससे पोषण प्राप्त करके भी पद्मपत्र एक निर्लिप्त भाव में रहता है। पानी न उसे डुबाता है न ज्यादा असर ही डाल पाता है। कोई एकाध बूँद पद्मपत्र पर चढ़ाई में सफल भी हो जाए तो वह मोती की तरह चमकती अलग दिखती है जैसे गलती किसी भुलावे में गलत रास्ते निकल आई हो और उसे अपनी गलती का भान हो। लेकिन गलती का भान भर हो जाने से पश्चाताप नहीं हो जाता। पश्चाताप तो फल भोग कर ही हो पाता है और बूँद ये कीमत अपना अस्तित्व खोकर चुकाती है।

संसार में कर्मयोगी की स्थिति स्पष्ट करने के लिए गीता में इस उपमा का प्रयोग मिलता है। कर्मयोगी इस संसार में जैसे इस संसार में होकर भी इस संसार में है नहीं। संसार के समस्त पंक से पोषण प्राप्त करेगा फिर कमल के फूल सा सौंदर्य भी गढ़ेगा। लेकिन सांसारिकता के प्रभाव से निर्लिप्त ही रहेगा। कभी पापाचार की कोई बूँद उसकी तरफ आ भी गई तो उसे मिटना ही है। कर्मयोगी के लिए कोई कर्म नहीं और कोई कर्मफल भी नहीं। लेकिन उसके कर्म का सौंदर्य जगत के लिए हैं। जगत उसे निहारेगा। पर कमल के पत्ते की भाँति जल में रहकर भी जल से विलग संसार में रहकर भी उसके प्रभावों से दूर कर्मयोगी को उससे क्या !

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।। ५.१०।।

जो पुरुष सब कर्म ब्रह्म को अर्पण कर आसक्ति को त्याग कर देता है, वह निश्चित ही कमल के पत्ते के सदृश पाप से लिप्त नहीं होता।

19, स्वस्तिक, सीटीओ, बैरागढ़, भोपाल

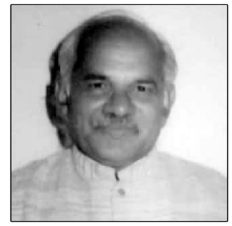

डॉ. हरप्रसाद शर्मा

कृष्णसखी द्रौपदी

अहिल्या द्रौपदी तारा कुंती मंदोदरी तथा।
पंचकन्या स्मरेत नित्यं सर्वपातक नाशनम्।।

अहिल्या, द्रौपदी, तारा, कुंती तथा मंदोदरी ये पंचकन्याएँ है। इनके स्मरण से पापों का नाश होता है। इस पंचकन्याओं में सबमें अपनी–अपनी विशेषता है। किंतु द्रौपदी में कुछ विलक्षण विशेषताएं है। इस लेख में द्रौपदी की इन्हीं विशेषताओं पर उसके जीवन चरित के आधार पर चर्चा की जा रही है।

जब अर्जुन द्वारा पांचाल नरेश द्रुपद पराजित कर गुरुदक्षिणा रूप में गुरु द्रोण को सौंप दिये गये तब उन्होंने गुरुद्रोण से समझौता तो कर लिया किन्तु द्वेष की अग्नि उनके मन में जलती रही। गुरु द्रोण से प्रतिशोध के लिए उन्होंने एक यज्ञ किया जिससे उन्हें ऐसा पुत्र प्राप्त हो जो द्रोण का वध कर सके। उस यज्ञ से पुत्र ही नहीं एक पुत्री भी उन्हें प्राप्त हुई। द्रुपद की पुत्री होने के कारण उसका नाम द्रौपदी, यज्ञो उत्पन्न होने के कारण याज्ञसेनी, पांचाल नरेश की पुत्री होने से पांचाली और कृष्ण वर्ण की होने के कारण कृष्णा नाम पड़ा।

याज्ञसेनी अप्रतिम सुंदरी थी अतः महाराज द्रुपद ने उसका विवाह करने के लिए मत्स्य वेधन की एक शर्त रखी। जो मत्स्य वेध कर सकेगा उसी के साथ द्रौपदी का विवाह होगा। इस हेतु आयोजित स्वयंवर में देश के वीर राजागण उपस्थित हुए। तब द्रौपदी के साथ यज्ञ में उत्पन्न उसके भाई धृष्टद्युम्न ने यज्ञ की शर्तें बताते हुए कहा कि ''मैं सच कहता हूँ जो उत्तम कुल, सुंदर रुप और श्रेष्ठ बल से संपन्न वीर यह कार्य कर दिखाएगा, आज यह मेरी बहन कृष्णा उसी की धर्मपत्नी होगी –

एतन्महत् कर्म करोति यो वैं, कुलेन रूपेण बलेनयुक्तः।।
तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं, कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि।।

महाभारत आदिपर्व 184.36

धृष्टद्युम्न की घोषणा सुनकर अनेक राजाओं ने मत्स्यवेधन का प्रयास किया किंतु कोई सफल नहीं हुआ। कर्ण इस कार्य के लिए उद्यत हुआ। तब सभा से, सूतपुत्र सारथी के शब्द आने लगे। कर्ण ने इनशब्दों की ओर ध्यान न देते हुए धनुष पर बाण का संधान किया उसी समय द्रौपदी चिल्ला पड़ी कि मैं सूत्रपुत्र का वरण नहीं करूंगी।

धरेउ शरासन बाणजस, कृष्णा कीन्हि पुकार।
बरिहौं मैं न अनार्यसुत, सूत सुवन, रथकार।।

कृष्णायन, द्वारकाकांड–123

अतः कर्ण धनुष बाण छोड़कर द्रौपदी से द्वेष एवं प्रतिशोध की ज्वाला से भरकर अपने स्थान पर आ गया। जब शर्त ही स्पष्ट थी कि मत्स्यवेध करने वाले वीर को कुल, रूप और बल तीनों से युक्त होना चाहिए, तब कर्ण की जिसकी जाति–पाति सूत थी, क्षत्रिय राजकुल की कन्या के लिये स्वयंवर में मात्र बल से प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए था। जब कोई राजा शर्त पूर्ति न कर सका तब महाराज द्रुपद दुःखी हुए, उसी समय 'विप्र समाज' से विप्र वेषधारी अर्जुन उठे और लक्ष्य वेध किया। द्रौपदी ने अर्जुन के गले में जयमाल पहनाई और पांडव लोग, जो उस समय लाक्षागृह दाह से बचकर छिपकर रह रहे थे तथा भिक्षावृत्ति से जीवन चला रहे थे घर पहुंचकर माता कुंती से कहा कि माता आज हमने बहुत अच्छी भिक्षा प्राप्त की है, आकर देखिये और आशीर्वाद दीजिए। माता कुंती ने बिना देखे ही कह दिया कि तुमने जो विशेष वस्तु प्राप्त की है उसे सभी बाँट लो। जब माता कुंती ने द्वार से निकलकर द्रौपदी को देखा तो माता कुंती को बहुत पश्चात्ताप हुआ कि ऐसा वाक्य उनके मुंह से कैसे निकल गया। इसी के आधार पर द्रौपदी का विवाह पांचों पांडवों के साथ हुआ।

इसके बाद द्रौपदी ने भोजन व्यवस्था की। भोजन का अन्न आधा भीम को और आधे में शेष सबको भोजन परोसा। यह द्रौपदी की प्रतिभा का द्योतक है कि उसने भीम का शरीर देखकर उसके भोजन का अनुमान लगा लिया। वस्तुतः ऐसा ही होता था भीम को कुल भोजन का आधा दिया जाता था। इसके बाद द्रौपदी ने तीन बिस्तर लगाये। सिरहाने में माता कुंती के लिए, बीच में पांचों पांडवों के लिए और पैरों की ओर अपने लिए। सोने के मणिजणित पलंग और मखमली शय्या पर सोने वाली द्रौपदी पाण्डवों के पैरों के पास कुशासन पर जमीन में सोयी, परन्तु न तो उनके मन में तनिक भी दुःख हुआ और न हीं पांडवों के प्रति अनादर का भाव आया।

द्रुपद ने पता लगाकर पांडवों को कुंती एवं द्रौपदी के साथ राजमहल में बुलवा लिया और वंश परम्परा के अनुसार अर्जुन के साथ द्रौपदी का विवाह करना चाहा तब पांचो के साथ विवाह करने की (माता के कथनानुसार) बात सामने आई। द्रुपद ऐसा करने में हिचक रहे थे। उसी समय महर्षि वेदव्यास आये और द्रौपदी के पूर्वजन्म का वृतांत बताते हुए पांचों पांडवों के साथ विवाह होना पूर्व निश्चित बताकर शंका का निवारण किया और द्रौपदी का विवाह पांचों पांडवों के साथ संपन्न हुआ।

द्रौपदी के साथ पांडवों का विवाह होते ही वे प्रकट हो गये और हस्तिनापुर का आधा राज्य भी उन्हें मिल गया। उन्होंने इन्द्रप्रस्थ नाम से अलग राजधानी बनाई और भगवान श्रीकृष्ण के परामर्श तथा सहयोग से राजसूय यज्ञ किया। इस राजसूय यज्ञ में देशभर के राजा आये। इसी समय युधिष्ठर का सभाभवन देखते हुए दुर्योधन जल को थल समझकर चलते हुए जल में गिर पड़ा

और भीग गया जिसे देखकर वहां उपस्थित लोग हंस पड़े, द्रौपदी भी हंसी, तब इस प्रसंग में द्रौपदी पर एक मिथ्या लांछन लगाया जाता है कि उसने यह कहा था कि अंधे का अंधा ही होता है। द्रौपदी जैसी मर्यादाशील आर्य–ललनाओं द्वारा जो धृतराष्ट्र के पांडवों के समान ही पितृव्य मानकर पूर्ण सम्मान देती थी,उसके प्रति ऐसे अमर्यादित वाक्य कहे जाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती और न हीं किसी प्राचीन ग्रंथ में इसका उल्लेख ही है। पता नहीं कहाँ से यह जनश्रुति आ गयी है।

दुर्योधन को गिरता देखकर जब द्रौपदी हंसी थी! (इस समय भगवान श्रीकृष्ण भी वहां उपस्थित थे और द्रौपदी से कहा था कि तुम्हें सरोष दृष्टि से देखते हुए दुर्योधन गया है! तब द्रौपदी ने कहा कि जब तक मेरे रक्षक चक्रपाणि यदुराय हैं, दुर्योधन क्या कर सकता है?

विहँसि द्रुपद तनया कहेउ, का करि है कुरूराय।
जब लगि रक्षक मोर हरि, चक्रपाणि यदुराय।।

कृष्णा.पूजाकांड 09

इससे स्पष्ट होता है कि द्रौपदी को भगवान श्रीकृष्ण पर कितना विश्वास था। यह विश्वास आगे शीघ्र ही मूर्तरूप लेता हुआ बहुधा दिखाई देता है।

हस्तिनापुर जाते ही दुर्योधन ने कुचक्र रचा और द्यूत के बहाने पांडवों को हस्तिनापुर बुलाकर उनका राजपाट सब कुछ छीन लिया और युधिष्ठिर जैसे धर्मराज ने द्रौपदी को द्यूत में दांव पर लगा दिया क्योंकि वे सबकुछ हार गये थे यहाँ तक कि स्वयं को भी।

यहाँ से द्रौपदी की विपत्तियों की श्रृंखला चालू होती है जो उसकी मर्यादाशीलता, पतिपरायणता और ईश्वर में अविचल निष्ठा का परिचय देती है। दुर्योधन ने जुएँ के दांव में हारी गई द्रौपदी को सभाभवन में बुलवाकर सभा में उसे निर्वस्त्र कर अपनी जांघ में बैठाने का उपक्रम किया। ऐसी विषम परिस्थितियों में द्रौपदी के मन में उठने वाले विविध मनोभावों को कुछ सहज ही स्वाभाविक वर्णन किया गया हैं–

(1) सभा भवन में पहुंचने के पूर्व के मनोभाव –

कहा गयो कपट जुआ जौं हों हारी।
समर धीर महावीर पांचों पति क्यों दै
है मोहिं होत उघारी।।
राज समाज सभासद् समरथ
भीषम द्रोण धनुधारी।
अबला अनद्या भग्नवसन अनुचित
होत हरि करि हैं रखवारी।।

श्रीकृष्ण गीतावली–60

अर्थात् द्रौपदी सोचती है कि कपट द्यूत में मैं भले ही हार गई होऊँ किन्तु मेरे साथ अन्याय व अपमान नहीं होगा क्योंकि मेरे धीर वीर पांच पति मेरी रक्षा करेगें, फिर राजसभा में भीष्म एवं द्रोण जैसे धर्मव्रती है, उनके रहते गलत काम नहीं होने पाएगा। फिर मैं अबला हूँ, अनवसर रहे अर्थात् उस समय मैं एक वस्त्रा हूँ। अतः किसी प्रकार गलत काम नहीं होगा।

(2) सभा भवन पहुंचने के बाद के मनोभाव – सभाभवन पहुँचकर द्रौपदी सभी गुरूजनों को प्रणाम करती है और पूछती है मेरे स्वामी धर्मतनय पहले मुझे हारे थे या स्वयं अपने आपको : किंतु यदि स्वयं को हार गये हों तो उनके पास मुझे हारने का अधिकार नहीं रह गया। अतः मैं दूसरे की दासी कैसे हुई ? –

हारे मोहिं प्रथम जो स्वामी।
मैं दासी कुरुपति अनुगामी।
पै जो पहिलेहिं आपुहिं हारा।
नष्ट मोहिं हारन अधिकारा।।

भई कवन विधि मैं पर चेरी।
करत न न्याय रहे का हेरी।।

कृष्णा.पूजाकांड 89.6–8

द्रौपदी द्वारा ऐसा धर्म प्रश्न किये जाने पर एकमात्र दुर्योधन के भाई विकर्ण ने कहा कि द्रौपदी ठीक कह रही है। सभासदों बोलिए और न्याय कीजिए किंतु कोई न्याय नहीं मिला। पितामह भीष्म ने सिर नवाते हुए आँसू बहाते हुए कहा कि मैंने बहुत पाप कर्म देखे हैं, किन्तु इससे बड़ा पाप नहीं देखा। धर्मराज पहले स्वयं तो हार गये, जब उनके पास कुछ नहीं रहा, तब बाद में तुम्हें दाँव पर रखा। किंतु पति–पत्नी का संबंध अविनाशी होता है, इसलिए मैं निर्णय नहीं कर सका। इस समय तुम पर बहुत संकट है, फिर भी तुमने धर्मप्रश्न किया है। इस कुल में धर्मराज युधिष्ठिर के समान कोई भी धर्मनिष्ठ नहीं है। अत उनके कहे अनुसार चलने में ही तुम्हारा कल्याण होगा?

इसप्रकार सभा में कोई संतोषजनक उत्तर न पाकर एवं कौरव दल की कुत्सित चेष्टाएँ देखकर पुनः कहती है :–

वंश निमल मोहिं विधि उपजाया।
विश्रुत विश्व पितहु मैं पाया।
आयी व्याहि भरत कुल माहीं।
सुजसु जासु सुनि सुरहु सिहाहीं।।
करत न आजु कोउ संरक्षण।
बैठे सकल अचल नत आनन।
कहाँ वृकोदर दर्प असीवाँ।
कहाँआजु अर्जुन गांडीवा।
कहाँ विदुर नय नीति बखाना।
कहाँ पितामह शौर्य महाना।।
अछत पाँचपति सब स्वजन,
जाति हाय मम लाज।।
ठहर-ठहर पापिष्ठ पै,
बचे अबहुँ यदुराज।।

कृष्णा.पूजाकांड 94

फिर भगवान से आर्त पुकार करती है :–

अब कोई न सहारा बिनु तेरे।
ओ गोपाल संवरिया मेरे।।
मेरे राधारमण गिरधारी।
गिरधारी श्याम वनबारी।।
अब कोउ न सहारा बिनु तेरे।
ओ गोपाल संवरिया मेरे।।

द्रौपदी की आर्त पुकार सुनते ही आर्तत्राण भगवान ने 'वसनवेष' धारण कर लिया जिससे :–

कर्षत जस जस रिस करि भारी।
तस तस बढ़त द्रौपदी सारी।।
गोविन्द केशव करति पुकारा।
बाढेउ बसन लाग अंबारा।।

अंततः दुःशासन थक कर बैठ जाता है और परिस्थिति की गंभीरता को देखकर धृतराष्ट्र द्रौपदी को बुलाकर कहता है कि :–

धर्मव्रता मम वधुन महँ, तोहिते बढि नहि आन।
गुनि प्रसन्न मोहिं माँगि अब, मनवांछित वरदान।।

कृ.पूजा 98

तब द्रौपदी कहती है कि :–

सॉचउ जो प्रसन्न तुम ताता।
पुनि मम जो अनुकूल विधाता।
तौ ये धर्मतनय दुखदीना।
तनि दासत्व होहिं स्वाधीना।।
एवमस्तु धृतराष्ट्र सुनावा।
माँगु पुत्रिवर पुनि मन भावा।
द्रुपद सुता सुनि गिरा उचारी।
लहहिं मुक्ति अब मम पति चारी।।

रथारूढ़ आयुध कर धारे।
होहिं बहुरि स्वाधीन सुखारे।।
औरहु माँगु कहेउ जब राऊ।
बोली बिहँसि न जात स्वभाऊ।।
मोहिं न तात मॉग अभ्यासा।
माँगेउँ रहे स्वामिजन दासा।।
अब सायुध सुरराज रथ,
स्वामी गण स्वाधीन।
सकत मोहिं दैजीति जग,
अब न द्रौपदी दीन।।

कृ.पू.99

उक्त कथन से द्रौपदी मे पितृकुल एवं पतिकुल के प्रति गौरव भाव, पिता एवं पति की श्रेष्ठता का भाव भगवान की अनन्यशरणता एवं पति परायणता का परिचय मिलता है। जिस पति ने उसे जुएँ में दांव पर रख दिया था उस संकट की घड़ी में सहायता के लिये आगे नहीं आया तब जिसके परिणामस्वरूप दुर्गति का यह अवसर आया उस निःसहाय की सहायता अनन्यशरण भगवान ने की। उसी पति का कल्याण सबसे पहले चाहती हो, यह है निश्छल पतिप्रेम। इसीलिए पति–पत्नी गृहस्थ जीवन रूपी गाड़ी के पहिये माने जाते है। पति के स्वाधीन हो जाने पर उसे संसार में और कोई आशा–अपेक्षा नहीं है। उसे पति मिल गये, सब कुछ मिल गया। शेष अपेक्षाएँ पति पूरी करेंगे।

इस प्रसंग में द्रौपदी के मन में उठने वाले मनोभावों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत महत्व है। जो सर्वसामान्य एवं स्वाभाविक है। हर व्यक्ति को परिस्थिति के अनुसार सामान्यतः समाज से व्यवहार की अपेक्षा होती है। वही अपेक्षा द्रौपदी की हो। वह सोचती है कि मैं इस समय रजस्वला होने के कारण एक वस्त्र धारण कर रही हूँ अस्पृश्य हूँ अतः मुझे कोई स्पर्श नहीं करेगा। फिर सभा में पितामह जैसे धर्मधुरंधर एवं बुजुर्ग लोग हैं। तब सभा में धर्म–विमुख कार्य होने का प्रश्न ही नहीं है। फिर मेरे पति हैं। हमारी कुछ गड़बड़ी करने का प्रयास किया जाएगा तो वे मेरी रक्षा करेंगे। साथ ही उसे अपने पितृतुल्य एवं पतिकुल की गरिमा का भी ख्याल आता है जिससे इसके साथ उस वंश–व्यवहार के ध्यान में रखते हुए गरिमापूर्ण व्यवहार ही होगा। वह सोचती है कि जिस वंश में मेरा जन्म हुआ है। कोई कह सकता है कि वंश तो ठीक था किन्तु पिता ठीक नहीं था, उसका निराकरण करती हुई कहती है कि पिता भी विश्व–विश्रुत हैं। तब कोई कह सकता है कि तुम्हारा पितृकुल तो ठीक नही था, इसका समाधान करती हुई कहती हैं कि मैं भरतकुल में ब्याही गई जिसकी प्रशंसा देवता भी करते है। तब कोई कह सकता है कि पतिकुल तो ठीक था किन्तु पति ठीक एवं योग्य नहीं। इसके समाधान के लिए कहती है कि पति तो इंद्र के समान तेजस्वी है और एक नहीं पांच है किंतु जब वह ऐसा सोच ही रही थी तभी दुःशासन ने उसकी साड़ी में हाथ लगा दिया और खींचने लगा। तब स्वाभाविक रूप में उसने अपने लोगों की ओर दृष्टि दौड़ाई, जिसे उसे रक्षा की आशा थी, किंतु निराशा हाथ लगी, उसमें भी असफल रही, तब निस्सहाय एवं निरुपाय होकर, अनाथनाथ अशरण शरण भगवान से हाथ उठाकर गुहार लगाई –

हाथ उठाई अनाथ नाथसों
पाहि पाहि प्रभु पाहि पुकारी।।

और द्रौपदी की ऐसी आर्त पुकार सुनते ही भगवान ने 'वसनवेष' धारण कर उसकी मर्यादा

की रक्षा की :–

तुलसी परखि प्रतीति प्रीति गति,
आपातकाल कृपालु मुरारी।
वसनवेष राखी विसेषि लखि
विरुदावलि मूरति नरनारी।।

लेकिन भगवान के द्वारा द्रौपदी की लाज रखे जाने के बाद धृतराष्ट्र द्वारा द्रौपदी से 'मनवांछित वरदान' मांगने की बात कहे जाने पर उसने मात्र स्वाधीन पतियों की मांग की, कोई धन, संपत्ति या राज्य की नहीं, जो उसकी निर्लोभता, पति परायणता एवं धर्मनिष्ठता का द्योतक है और उसे सामान्य से असामान्य कोटि में ले जाता है।

अभी द्रौपदी की विपत्तियों का अंत नहीं हुआ था, यह तो उसका प्रारंभ था। फिर द्यूत–क्रीडा होती है और पांडवों को बारह वर्ष का निवास और एक वर्ष का अज्ञातवास मिलता है। द्रौपदी पांडवों के साथ वन में रहकर उनकी सेवा करती है। सूर्य से एक बटलोही मिलती है जिसे अक्षयपात्र कहा गया है। उस अक्षय पात्र का यह प्रभाव था कि उससे जितना भी भोजन परोसा जाय घटता नहीं था। किंतु द्रौपदी के भोजन करते ही उस दिन के लिए वह अक्षय नहीं रह जाता था। एक दिन वनवास के समय जब द्रौपदी भोजन कर चुकी थीं तथा अक्षय पात्र साफ कर चुकी थी, महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों के साथ आये। वे स्नान करने गये। इधर द्रौपदी की चिंता बढ़ी। धन्य है अन्नपूर्णा गृहस्वामिनी द्रौपदी, इसकी चिन्ता पतियों को नहीं, द्रौपदी को है कि ऋषियों के भोजन का प्रबंध कैसे होगा? वह अशरणशरण भगवान को पुनः याद करती है :–

सभा भवन जस मोंहि उबारा।
करहु नाथ तस पुनि उद्धारा।।
कुटीद्वार ठाढ़ी विकल,
उड़न चहत जनु प्राण।
रथ धर्धर श्रवणन परेउ,
आय गये भगवान।।

कृ.पू.139

भगवान ने आते ही, शाककण खाकर तुष्टि की डकार ली और मुनियों को अफल लग जाता है जिससे स्नान का पलायन कर जाते है, इस प्रकार द्रौपदी एवं पांडवों की, दुर्वासा के आसन्न संकट से रक्षा होती है।

अज्ञातवास के समय द्रौपदी को विराट के यहाँ सैरन्ध्री के रूप में दासी बनकर रहना पड़ा। पाँचों पांडव भी छद्म वेष में वही रहते थे। वहां पर भी द्रौपदी पर महान संकट आया। इसे दासी कर्म ही नहीं करना पड़ा बल्कि उसके शील पर आक्रमण हुआ जिसे अपनी बुद्धिमता एवं भीम के सहयोग से निवारण किया किन्तु वहां भी संयम एवं पतियों की आज्ञाकारिता नहीं खोई।

वनवास एवं अज्ञातवास की अवधि पूरी होने पर पुनः पाण्डवों के राज्य प्राप्ति का प्रसंग आया। भगवानश्रीकृष्ण समझौता कराने के उद्देश्य से दूत बनकर हस्तिनापुर जाने लगे तब द्रौपदी ने भगवान से कहा कि –

'श्रीकृष्ण! मेरे समान दुखिया इस पृथ्वी पर और कौन स्त्री होगी। मैं महाराज द्रुपद की पुत्रवधू की अयोनिजा कन्या, घृष्टद्युम्न की बहिन, आपकी प्रिय सखी, धर्मात्मा पांडु की पुत्रवधु और वीर पांडवों की धर्मपत्नी हूँ। मेरे गर्भ से महारथी पुत्र उत्पन्न हुए है। मैं ऐसी सौभाग्यवती होकर पाण्डवों के सामने और आपके जीते जी सभा में अपमानित की गई, मैंने वह क्लेश सहा। कमलनयन! आप मेरा दुख जानते हैं अतः

करन लगहिं अरिसंग जब संधि आप विश्वेश।
दुःशासन कर्षित प्रभो, विसरहिं नहिं मन केश।।

कृ.गी.27

द्यूतक्रीड़ा के समय दुःशासन द्रौपदी के केश खींचते हुए सभाभवन में लाया था। सभाभवन में भगवान की कृपा से संकट मुक्त होने पर द्रौपदी ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक इसके हाथ नहीं तोड़े जाएँगे और इसके रक्त में उन्हें नही धो लूंगी तब तक ये केश मैं बाँधूगी नहीं—

खल भुज भंजनरक्त बिनु,
बंधि हौ नहि ये वार।
जेहिं पति राखि आजु मय,
सोइ प्रण राखन हार।।

कृ.पू.97

भगवान श्रीकृष्ण का दूतत्व सफल नहीं होता और अंततः महाभारत का युद्ध होता है जिसमें अपार जनसंहार होता है। हां, पांचों पांडव सुरक्षित रहते हैं। किंतु युद्ध के अंतिम दिन की रात में पांडव भगवान श्रीकृष्ण के निर्देशानुसार शिविर में न सोकर अन्यत्र सोये और उसी रात अश्वत्थामा प्रतिशोध की आग से जलता हुआ शिविर में प्रवेश कर सोते में द्रौपद्री के पुत्रों एवं भाइयों की हत्या कर देता है। द्रौपदी जो अब पिता, भाई और पुत्रों को खो चुकी थी अचेत होकर जमीन में गिर पड़ी। जब सुबह पांडव शिविर में आते है तब रथ को देखते ही पता करते हुए पीछा करते है और अंततः अश्वत्थामा को पकड़ लाते हैं और अपने मृत पुत्रों का शोक करती हुई द्रौपदी को सौंप देते हैं। तब द्रौपदी ने देखा कि अश्वत्थामा पशु की तरह बांध कर लाया गया है। निन्दित कर्म के द्वारा उसका मुख नीचे की ओर झुका हुआ है। अपना अनिष्ट करने वाले गुरुपुत्र अश्वत्थामा को इस प्रकार अपमानित देखकर द्रौपदी का कोमल हृदय कृपा से भर आया और उसने अश्वत्थामा को नमस्कार किया। गुरुपुत्र का इसप्रकार बाँधकर लाया जाना सती द्रौपदी को सहन नही हुआ। उसने कहा इन्हें छोड़ दीजिए ये ब्राह्मण हैं, हम लोगों के अत्यंत पूजनीय है। जिनकी कृपा से आपने रहस्य के साथ सारे धनुर्वेद और प्रयोग तथा उपसंहार के साथ संपूर्ण शस्त्रास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया है वे आपके आचार्य द्रोण ही पुत्र के रूप में आपके सामने खड़े हैं। उनकी अर्धागिंनी कृपी अपने वीर पुत्र की ममता से ही अपने पति का अनुगमन नहीं कर सकीं, वे अभी जीवित हैं, महाभाग्यवान आर्यपुत्र! आप तो बड़े धर्मज्ञ हैं, जिस गुरुवंश की नित्य पूजा और वंदना की जानी चाहिए, उसी को व्यथा पहुंचाना आपके योग्य कार्य नहीं है। जैसे अपने बच्चों के मर जाने से दुखी होकर मैं रो रही हूँ और मेरी आंखों से बार—बार आंसू निकल रहे है, वैसे ही इनकी माता पतिव्रत गौतमी न रोये। जो उच्छृंखल राजा अपने कुकृत्यों से ब्राह्मण कुल को कुपित कर देते हैं वह कुपित ब्राह्मणकुल उन राजाओं को सपरिवार शोकाग्नि में जलकर शीघ्र ही भस्म कर देता है। श्रीमद्भागवत, 1.7.42—48

द्रौपदी कहती है कि अब प्रतिशोध युद्ध—भूमि को छोड़कर शिविर में प्रवेश कर गया है, निर्बल कभी उदार नहीं होता है, आप बलशाली है अतः प्रतिकार को छोड़कर क्षमाभाव धारण करिये जिससे बैर—चक्र समाप्त हो जाय। इनके माने जाने पर भी अपने पुत्र, पिता और भाई को नहीं पा सकती हूँ इसलिए—

गुरु निथाति, अब सुत निहित,
करहु न निखिल कुलांत।।
धारि नृपोचित कर क्षमा,
करहु नाथ बैरांत।।

कृ.जय.270

द्रौपदी के उक्त कथन से उसका करुणाभाव, पर दुःखकांतरता एवं उदारता प्रकट होती है। जो

असामान्य है। द्रौपदी के इन वचनों को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण भी सजल नेत्र होकर द्रौपदी के असामान्य गुणों को बखान करते हुए उसके वचनों का सम्मान करने को कहते हैंः–

सम्मानहु द्रौपदि अनुरोधा।
त्यागहु तात क्रोध प्रतिशोधा।
गुण निधान साध्वी गांधारी।
सकी न सोइ करशेष सँझारी।।
पै निज संयम बल पांचाली।
कीन्ह नारिकुल गौरवशाली।।
उपकृत कृष्णासम जगमाहीं।
जन्मी कबहु अन्य तिमय नाहीं।
लहेउ न भरि जीवन सुख भासू।
रही विपत्तिहिं संपति तासू।।
हारेउ पति जेहिं द्यूत पणीकृत।
अरिकृत जासु बसन कच कर्षित।
सहि दुख वन पुनि बैर उबासी।
रही विराट भवन जो दासी।।
कृपावती सोइ आजु उदारा।
छमति भ्रातु, पितु सुत, हत्यारा।
जो दानव खल दल दलनि,
चंडी मूर्ति रणादि।
दयामूर्ति अब अंबिका,
सोई शत्रु अवसादि।।

कृ.जय.27।।

इससे पांडवों ने अश्वत्थामा का वध नहीं किया। अश्वत्थामा को इस प्रकार माफी पाकर आश्चर्य हुआ। द्रौपदी में आदर्श गृहिणी के विशिष्ट गुण थे। अनेक दासियों के रहने पर भी अपनी सास कुंती की सेवा स्वयं करती थी।

एक बार सत्यभाभा ने द्रौपदी से पूछा था कि 'सखी' तुम अपने वीर पतियों को किस व्यवहार से संतुष्ट रखती हो। वे तुम्हारे वश में रहते हैं। मुझे भी कोई ऐसा उपाय बताओ तब द्रौपदी ने कहा कि क्या कोई पतिव्रता स्त्री अपने पति को वश में करना चाहती है? पतिव्रता तो सदा अपने पति के वश में रहती है और रहना चाहती है। बहिनं! पति को प्रसन्न रखना और उसके वश मे हो जाना ही उन्हें अपने वश में रखने का उपाय है। स्त्री के लिए पति के समान कोई देवता नहीं है। पति की प्रसन्नता से स्त्री के सब मनोरथ पूरे हो जाते है।

द्रौपदी के इन्हीं गुणों को ध्यान में रखते हुए जुएँ के दॉव पर लगाते हुए युधिष्ठिर ने कहा था कि एक आदर्श पति अपनी पत्नी में जितने गुण देखना चाहता है वे सब द्रौपदी में विद्यमान है।

धृतराष्ट्र ने कहा था कि द्रौपदी की क्रोधपूर्ण दृष्टि से सारी पृथ्वी भस्म हो सकती है। फिर भी सती द्रौपदी ने ऐसी रोषपूर्ण दृष्टि नही डाली।

किसी भी नारी का जीवन उसके मातृत्व में सफल माना जाता है। द्रौपदी के पांच पुत्र थे– प्रतिबिन्ध्य, श्रुतसोम; श्रुतकर्मा,शतानीक और श्रुतसेन जो क्रमशः पांचो पांडव बंधुओं से संजात थे –

द्रौपद्यां पंच पंचभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन्।।
युधिष्ठिरात् कीतिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः।।
सहदेव सुतो राजभ्छुतकर्मा, तथापरे।।

भागवत 9/22/28–30

मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है कि विश्वामित्र जी के शाप से विश्वदेव ही द्रौपदी के पांच पुत्रों के रूप में जन्मे थे। शाप के अनुसार ही वे अविवाहित रहे और शाप मुक्त होकर पुनः देवलोक में चले गये। इस प्रकार औरस पुत्रों की पुत्रवधुओं का स्नेहभाजन बनाने का अवसर द्रौपदी को नहीं मिला किंतु हिडिबापुत्र घटोत्कच की बधू मौवीं एवं सुभद्रा अभिमन्यु की बधू उत्तरा को जो स्नेह द्रौपदी से मिला वह अप्रति है, वस्तुतः द्रौपदी का

अभिमन्यु पर असीम प्यार व विश्वास था उसी प्रकार उत्तरा पर न तो उसने सुभद्रा को कभी सौत समझा, बल्कि बहिन ही माना–

निरखि सुरूप सुशील सुचाली।
भगिनिहि सम मानी पांचाली।

उसी प्रकार अभिमन्यु को भी उसने सौत–पुत्र जैसा नहीं माना, औरस पुत्र ही माना

अभिमन्युहिं भरि हृदय लगावा।
औरस सुवन मनहुँ पुनि पावा।।

कृ.पू.129.5

इसीलिए जब भगवान श्री कृष्ण संधि प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जा रहे थे तब द्रौपदी ने अपने पक्ष का सामर्थ्य बताते हुए कहा था कि–

शौर्य राशि अभिमन्यु हमारा।
हम कटिबद्ध चहत प्रतिकारा।
सकहि को रोकि समर गति ताकी।
सकृतिनास अरिकुल एकाकी।।

कृ.गी.27.7–8

जब भगवान श्रीकृष्ण ने सुना कि उत्तरा ने मृत शिशु को जन्म दिया है तो वे सूतिका–ग्रह की ओर गये। कुंती और सुभद्रा उन्हें रास्तें में मिलीं और मृत शिशु को जीवित करने का उनसे आग्रह किया। किंतु भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि द्रौपदी उस दुखिया उत्तरा की सेवा में लगी हुई है। (कल्याण नारी अंक पृ.538)

इससे स्पष्ट होता है कि परिवार में सास, पति, सौत पुत्र एवं पुत्रवधू के प्रति द्रौपदी का कितना समता एवं ममतापूर्ण व्यवहार था।

पति–पाण्डवों को द्रौपदी ने दाता से ही मुक्त नहीं करवाया था बल्कि जीवनदान भी दिलवाया था। जब दुर्योधन के उकसाने पर पितामह भीष्म ने पांडवों को मारने की प्रतिज्ञा कर ली तब पांडव शिविर में शोक व्याप्त हो गया। द्रौपदी भी सोच रही थी कि पितामह की प्रतिज्ञा अकाट्य है। फिर भगवान श्रीकृष्ण के उपकारों का स्मरण करती हुई, मन में उन्हीं से कहती है कि तुम्हारी कृष्णा तुम्हारे होते हुए विधवा हो जायगी और तुम देखते रहोगे। क्या तुम्हारी यही इच्छा है?वह आर्तस्वर में कृष्ण–कृष्ण पुकारने लगी।

रात्रि का तृतीय पहर व्यतीत हो चुका था। सहसा द्वार पर शब्द सुनाई दिया 'कृष्णा' द्रौपदी चौंकी, प्रभु आ गये, मेरे नैया के कर्णधार आ गये। भैया मैं जानती थी कि तुम अवश्य आओगे। 'रोती है पगली' प्रभु ने उत्तरीय से उसके आंसू पोंछे और कहा कि चलने को तैयार हो जा! द्रौपदी को साथ लेकर पितामह के पास चले। द्रौपदी की जूतियां अपने पीतांबर में छिपा ली। द्रौपदी ने ध्यानस्थ पितामह को प्रणाम किया और पितामह ये कौन सा सत्य है, आपकी पांडव वध की प्रतिज्ञा का अखंड सौभाग्यवती होने का वरदान दिया? तब पितामह ने आंख खोलकर देखा कि द्रौपदी से पूछा द्रौपदी तुम, यहाँ और तुम्हें लाने वाला वह छलिया कहां है? द्रौपदी पितामह को श्रीकृष्ण के पास ले गई। पितामह दर्शन पाकर धन्य हुए। इस प्रकार पांडवों का द्रौपदी ने पितामह की पांडव वध की प्रतिज्ञा से अपनी कृष्ण भक्ति के बल से मुक्त कराया।

पांडवों का वनवास सुन भगवान श्रीकृष्ण उनसे मिलने वन में आये। तब द्रौपदी ने अपनी वेदना भगवान से व्यक्त करते हुए कहा कि हे कृष्ण! चार ऐसे कारण हैं जिनसे तुम्हें सर्वदा मेरी रक्षा करनी चाहिए– एक तो तुम मेरे संबंधी हो, दूसरे तुम मेरे सखा हो, तीसरे मैं यज्ञवेदी से उत्पन्न हुई हूँ और चौथे तुम प्रभु हो –

चतुर्भिद कारणैः त्वया रक्ष्यास्मि नित्यशः।।
संबंधा गौरवात् सख्याति प्रभुत्वे नैव केशव।।

द्रौपदी का भगवान श्रीकृष्ण के प्रति यह सखाभाव, अनिर्वचनीय भाव है। वस्तुतः वह भगवान श्रीकृष्ण को परमात्मा के रूप में पहचानती थी और उनके प्रति अविचल श्रद्धा थी। भगवान श्रीकृष्ण उसे सखी कहते थे –

देहि सखी कछु मोहि खवाई।
मुनि हित पाक करिह पुनि जाई।।

कृ.पू.140.3

द्रौपदी के जन्म के संबंध में महर्षि वेदव्यास जी ने महाराज द्रुपद को बताया कि एक समय यमराज यज्ञ में बैठ गए तो संहार कार्य बंद कर दिया। इससे मृत्यु होना बंद हो गयी। देवताओं को इससे दुख हुआ कि अब मनुष्य भी उनके समान अमर हो रहे है। अतः सब देवता मिलकर ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी ने समझाया कि यज्ञ के बाद यमराज पूर्ववत कार्य करेंगे। तुम चिंता एवं ईर्ष्या नहीं करो। देवता वहीं गये जहां यज्ञ हो रहा था एक दिन सभी देवता नदी के किनारे बैठे थे तभी एक सोने का कमल बहता दिखा। इन्द्र उस सुंदर फूल की उत्पत्ति का पता करने के लिए धारा के ऊपर की ओर चलने लगे। उन्होंने देखा कि जहां से नदी निकली है वहां एक स्त्री, जो बहुत तेजस्विनी है, जल भर रही है और रो रही है। उसी के आंसू की बूंदे सोने का कमल बनजाती थी। इन्द्र ने उससे रोने का कारण पूछा तो उसने साथ चलने को कहा। इन्द्र ने जाकर देखा कि हिमालय के शिखर पर एक सुंदर पुरुष एवं एक युवती बैठे चौसर खेल रहे है। इन्द्र की ओर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। इससे इन्द्र ने अपना अपमान समझा और कहा कि युवक तुमको मालूम होना चाहिए कि मैं इस लोक का स्वामी हूँ। तब युवक ने उसकी ओर देखा कि दृष्टि पड़ते ही इन्द्र ठूंठ हो गया। वह स्त्री रोने लगी। खेल पूरा होने पर युवक ने स्त्री के कहा कि इन्द्र को मेरे पास ले आओ। स्त्री ने ज्यों ही इन्द्र का स्पर्श किया, त्यों ही इन्द्र पृथ्वी पर गिर पड़ा। वास्तव में युवक भगवान शंकर थे और साथ में माता पार्वती थी। शंकरजी ने कहा कि तुम्हें शक्ति का गर्व नहीं करना चाहिए। तुम्हारी शक्ति किसी दूसरे की हो। फिर भी तुममें शक्ति है तो सामने की शिला को हटाकर अंदर जाओ तुम्हारे जैसे और इन्द्र वहां पर है। इन्द्र वहां गये और देखा कि चार इन्द्र वहां और है। शंकर जी ने कहा कि यहां पड़े रहो। बाद में प्रार्थना करने पर शंकर जी ने कहा कि तुम लोग मर्त्य लोक में मानव रूप में जन्म लो और यह स्त्री तुम्हारी पत्नी होगी। सभी इन्द्रों ने विनती की कि हमारी उत्पत्ति मनुष्य के द्वारा न हो बल्कि धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनी कुमारों के द्वारा हमारी उत्पत्ति हो। मर्त्यलोक का कार्य कर पुनः अपने लोक में आ जाय। उस रोती हुई स्त्री से शंकरजी ने कहा कि 'कल्याणी! तुम स्वर्ग की लक्ष्मी हो, तुम आदि शक्ति भगवती लक्ष्मी की अंशस्वरूपा हो। तुम भी इन दोनों के साथ मर्त्यलोक में जाओ और इन पाँचों की धर्मपत्नी बनों। उस स्त्री ने भगवान शंकर की आज्ञा शिरोधार्य की ।इन पांचो इन्द्रों के नाम हैं– विश्वमुक् भूतधन्या, शिवि शान्ति और तेजस्वी।

फिर शंकरजी सबको लेकर भगवान नारायण के पास गये और पूरा वृतांत बताया। तब भगवान ने कहा कि शंकर तुम तो मेरी आत्मा हो, अतः मेरी इच्छा अनुरूप ही कार्य किया है। मनुष्यों के रूप में बहुत से दैत्य प्रकट हो गये हैं। इन देवताओं की इच्छा भी थी कि उनका संहार हो तो तुमने इनकी कामना पूर्ण की। अब यही लोग चलकर संहार कार्य संपन्न करें। मैं भी यदुवंशियों में अवतीर्ण होने वाला हूँ। उनके कार्य में सहायता करूँगा।

अतः वे नारायण ही श्रीकृष्ण रूप में अवर्तीण हुए है। पहले के चारो इन्द्र युधिष्ठिर भीम, नकुेल और सहदेव हुए, पांचवे पुरंदर के अंश से सव्यसांची अर्जुन हुए। वह स्वर्ग की लक्ष्मी द्रौपदी है।

जब भगवान श्रीकृष्ण ने पृथ्वी का भार उतार कर तथा धर्म की स्थापना कर जिसमें सहकारी भूमिका पांडवों की एवं निमित्त द्रौपदी थी, अपनी लीला संवरण कर ली, तब पांडवों ने भी भगवान के लीला संवरण करने का समाचार पाकर अपने पौत्र परीक्षित को राज्य सौंपकर हिमालय की ओर प्रस्थान कर दिया। आगे–आगे धर्मराज युधिष्ठिर चल रहे थे तथा पीछे–पीछे सभी भाई और कृष्ण सखी द्रौपदी! पांडवों के ह्रदय में भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों के ध्यान से भक्तिभाव उमड़ आया, उनकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध होकर भगवान श्रीकृष्ण के उस सर्वोत्कृष्ट स्वरूप में अनन्य भाव से स्थिर हो गई, जिसमें निष्पाप पुरुष ही स्थिर हो पाते हैं। फलतः उन्होंने अपने विशुद्ध अंतःकरण से स्वयं ही वह गति प्राप्त की जो विषयासक्त मनुष्यों को कभी नहीं प्राप्त हो सकती। जब द्रौपदी ने देखा कि अब पांडव लोग निरपेक्ष हो गये हैं, तब भी अनन्य प्रेम से भगवान श्रीकृष्ण का ही चिंतन करके उन्हें प्राप्त हो गईः–

द्रौपदी च तदाऽऽज्ञाय पतीनामनपेक्षताम्।
वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराय तम।।

भाग01.15.50

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण की सखी द्रौपदी श्रीकृष्ण को प्राप्त हुई।

द्रौपदी का दिव्य जन्म, कुल, रूप और बल से लभ्य गार्हस्थ्य जीवन में आदर्श पत्नी के समस्त गुणों से युक्त पातिव्रत धर्म का निर्वहन, दिव्य जन्मा और चक्रवर्ती राजमहिषी होकर भी निरभिमान और घोर संकट के समय भी विपत्तियाँ सहते हुए धर्म–निर्वहन किन्तु जीवन भर अशरण शरण भगवान पर अविचल निष्ठा और उसी निष्ठावान से स्वयं की विपत्ति एवं पतियों की विपत्ति का निवारण, घोर से घोर संकट में भी पतियों का साथ देना, और उस अवस्था में भी उनकी सेवा का अवसर पाकर अपने को धन्य समझना, द्रौपदी के कुछ ऐसे गुण हैं जो अयोनिजा अवनिसुता भगवती सीता की याद दिलाते हैं। जैसा भगवती सीता ने स्वयं लक्ष्मण जी से कहा था कि :–

भामिकेयं तनु नूनं सृष्ट दुःखाय लक्ष्मण।
धात्रा यस्यास्तथा मेऽय दुःखमूर्तिः प्रदृश्यतो।।

वा.रा.7.48.3

अर्थात् हे लक्ष्मण! निश्चय ही विधाता ने मेरे शरीर को केवल दुख भोगने के लिए रचा है, इसीलिए आज सारे दुखों का समूह मूर्तिवान होकर मुझे दर्शन दे रहा है। उसी तरह भगवान श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के संबंध में कहा था कि :–

लहेउ न भरि जीवन सुख भासू।
रही विपत्तिहिं संपति तासू।।

कृष्ण.जयकांड271.5

फिर भी जैसा त्रेता में भगवती सीता 'असुर संहार' का निमित्त बनी थीं जिससे रामराज्य की स्थापन का मार्ग प्रशस्त हुआ था, वैसे ही द्वापर में कृष्ण सखी द्रौपदी 'नराधमों के संहार' का निमित्त बनी थी जिससे 'धर्मराज्य' की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ था।

रायपुर छत्तीसगढ़

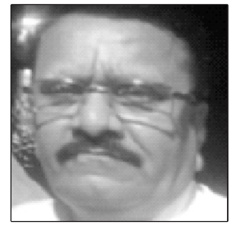

सुभाषचंद्र जोशी

धर्म क्षेत्रे कुरु क्षेत्रे

धर्म स्थापना के लिये अंतिम विकल्प के रूप में युद्ध जैसा जघन्य कर्म भी नीति संगत है, यह तथ्य भगवान श्रीकृष्ण ने कुरु क्षेत्र के मैदान में गीता उपदेश द्वारा स्थापित किया था एवं सत्ययुग में यहां ब्रह्मा की यज्ञवेदी भी थी अतएव कुरुक्षेत्र के लिये धर्मक्षेत्र की उपमा अनुचित नहीं। गीतोपनिषद का प्रथम एवं धृतराष्ट्र के मुख से उच्चारित एकमात्र श्लोक, 'धर्म क्षेत्रे कुरु क्षेत्रे समवेता युयुत्सुवः। मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।'' में उन्होंने युद्ध के मैदान कुरु क्षेत्र को धर्म क्षेत्र कहा। युद्ध भूमि में पांडवों के साथ श्रीकृष्ण की उपस्थिति के अनिवार्य परिणाम का आभास धृतराष्ट्र द्वारा कुरुक्षेत्र के लिये धर्मक्षेत्र शब्द प्रयोग में व्यक्त होता है। दुर्योधन की हस्तिनापुर राज्य हड़पने की कुत्सित आकांक्षा एवं इसके लिये युद्ध घोषणा, का मौन समर्थन कर अधर्म पथगामी हुए, अपराध बोध से ग्रसित धृतराष्ट्र के अवचेतन में जन्मी विपरीत परिणाम की आशंका, उसके द्वारा कुरु क्षेत्र के लिये प्रयुक्त धर्म क्षेत्र शब्द में ध्वनित होती है। अगली पंक्ति में युद्ध की तैयारी पर प्रश्न हे एवं परिणाम को लेकर मौन जिज्ञासा भी, जिसके उत्तर में संजय जी युद्ध क्षेत्र का आंखों देखा हाल गीता उपदेश सहित सुनाने के बाद धृतराष्ट्र की मौन जिज्ञासा का उत्तर अठारहवें अध्याय के अंतिम श्लोक द्वारा देते है, ''**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम**।।'' अर्थात् जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण और धनुर्धर अर्जुन है वहां नीति एवं विजय अटल है।

गीता के उपरोक्त प्रथम और अंतिम दोनों श्लोकों के मध्य उपदेशित संपूर्ण गीता ज्ञान, धर्म स्थापना के अंतिम विकल्प युद्ध के लिये अर्जुन को प्रेरित करने पर केंद्रित है। जीवन में कर्म की अनिवार्यता, कर्मों की श्रेणी, कर्मफल, आत्मा, परमात्मा, ज्ञान, भक्ति, एवं योग ,आदि गीता में वर्णित मानव कल्याण संबंधी सनातन धर्म के मूल उपादानों की भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से विस्तृत विवेचना का मंच होने के कारण

भी पवित्र कुरुक्षेत्र, धर्म क्षेत्र कहलाने का अधिकारी है। गीता में एक ही श्रेणी के कर्म हेतु कर्मफल का स्वरूप भगवान ने उद्देश्य की पवित्रता अथवा अपवित्रता के संदर्भ में भिन्न–भिन्न निरूपित कर सनातनियों को वह संदेश दिया जिसके विस्मरण का मूल्य भारत ने एक सहस्त्र वर्षों की परतंत्रता के रूप में चुकाया। उद्देश्य के आधार पर ही कर्म के उचित अनुचित होने एवं कर्मफल की विवेचना की जा सकती है। यथा यह संदेह स्वाभाविक है कि धृतराष्ट्र के समर्थन से अपने स्वार्थ के लिये दुर्योधन अपने बंधुओं के विनाश हेतु तत्पर था इसलिये यदि उसका पक्ष अधर्म का था तो स्वजनों के विरुद्ध हथियार न उठाने को तत्पर अर्जुन को स्वयं श्री कृष्ण, बंधुओं के वध हेतु युद्ध की प्रेरणा दे रहे थे। फिर उनका पक्ष धर्म का कैसे हुआ? दोनों कर्म एक ही श्रेणी के थे। दोनों ही पक्ष बंधुओं के वध को प्रस्तुत थे। क्षत्रिय होने के कारण युद्ध दोनों का स्वाभाविक कर्म भी था परंतु श्रीकृष्ण ने यहां धर्म और अधर्म का स्वरूप युद्ध के उद्देश्य के आधार पर परिभाषित कर इसे धर्मयुद्ध निरूपित किया।

भगवान का कथन कि सतोगुण से प्रेरित सात्विक बुद्धि द्वारा करणीय और अकरणीय कर्म में एवं कर्तव्य, अकर्तव्य में भेद कर कर्म का निर्णय किया जाना चाहिये। गीता 16/24 एवं 18/30, इसी प्रकार कर्मों के त्याग संबंधी प्रश्न पर श्रीकृष्ण कहते है कर्म का त्याग नहीं अपितु कर्म में निहित वासना का त्याग एवं पश्चात् कर्मफल का त्याग ही वास्तविक त्याग अथवा सन्यास है। इसके लिये कर्मों के प्रकारों का उल्लेख गीता में है, "यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।" गीता 18/5,6, अर्थात् कर्मों की यह तीनों श्रेणी यज्ञ दान एवं तप नहीं त्यागने चाहिये यहां यज्ञ से अभिप्राय जन कल्याणार्थ किए अनुष्ठान से है तात्पर्य यह कि लोक कल्याण हेतु आवश्यक, युद्ध सहित प्रत्येक कर्म यज्ञ रूप होकर करणीय कर्म है। इन्हें कर्तव्य समझ कर किया जाना चाहिये।

इस कसौटी पर दुर्योधन द्वारा स्वजनों का वध, यज्ञ रूप कर्म नहीं थे क्योंकि इनका उद्देश्य जन कल्याण न होकर भौतिक सुख हेतु राज्य प्राप्ति था इसलिये अधर्म था परंतु पांडवों द्वारा शांति स्थापना हेतु राज्य के स्थान पर आजीविका के लिये पाँच गांवों की मांग में राज्य लिप्सा का त्याग स्पष्ट देखा जा सकता है।

अर्थात् श्रीकृष्ण द्वारा स्वजनों के वध की प्रेरणा में उद्देश्य राज्य प्राप्ति न होकर देश में आततायी कौरव शासन से मुक्ति एवं धर्म की स्थापना था। राज्याधिकार इसका माध्यम था इसके लिये अंतिम विकल्प युद्ध, यज्ञ रूप कर्म होने के कारण श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इसके लिये प्रेरित किया। युद्ध में प्रतिपक्षी स्वजन थे परंतु उद्देश्यों की कसौटी पर अहंकारी दुर्योधन का, राज्य प्राप्ति की निजी महत्वाकांक्षा के कारण एवं संपूर्ण कौरव पक्ष का उसके सहयोगी होने के कारण, वध धर्म संगत था। धर्म स्थापना के लिये मंचित इस महान नाटक का रंगमंच होने के साथ श्रीकृष्ण की साक्षात उपस्थिति एवं उनकी वाणी में गीता उपदेश की गूंज से पवित्र हुई कुरुक्षेत्र की भूमि के लिये धर्मक्षेत्र विशेषण सर्वथा उपयुक्त है।

सी 2 –188 व्यास नगर, उज्जैन मो. 9424561450, 7987340816

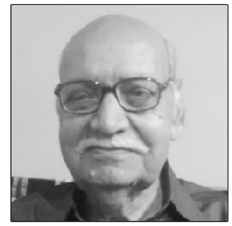

एन.डी. सोनी

रामचरितमानस के कतिपय प्रसंग : आधुनिक बोध

श्रीराम, रामचरितमानस और संत तुलसीदास जी के बारे में हजारों पुस्तके और टीकाएँ लिखी गईं हैं जिनकी अपनी–अपनी विशेषताएँ हैं। डॉ. खरे की शीर्षक पुस्तक की विशेषता या उद्देश्य मानस के विविध प्रसंगों की उपादेयता को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना है। आलोच्य पुस्तक में खरे जी ने मानस के ऐसे प्रसंगों को लिया है जो मानस मर्मज्ञों के साथ–साथ सामान्य जनमानस को भी आन्दोलित करते आ रहे हैं। उन्होंने वर्तमान संदर्भ में मानस की उपयोगिता पर उठने वाली जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए ऐसे प्रसंगों को भी छुआ है जो आज के समय में भी समीचीन हैं। मानस में वृद्ध विमर्श, नारी विमर्श, दलित विमर्श पर्यावरण चेतना, भारत की शरणागत नीति, राक्षसी अत्याचार के समकक्ष वर्तमान आतंकवाद, श्री राम का मर्यादा पुरुषोत्तम की छवि बनने के पूर्व विभिन्न परीक्षाओं की कसौटी पर खरे उतरना आदि अनेक ऐसे विषय और समस्याएँ हैं जो आज भी प्रासंगिक हैं। इन प्रसंगों पर खरे जी का चिंतन–मनन और विशलेषण जहाँ विद्वानों को परितोष प्रदान करेगा वहीं देश के नीति–निर्धारक अधिकारियों और राज–नेताओं को भी मार्गदर्शन देने का काम करेगा।

मानस के विभिन्न सर्गों में आए अनेकानेक पात्रों का जो चरित्र हमारे समक्ष आता है वह भारतीय सभ्यता और संस्कृति का परिचायक है। वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता में डूबी नई पीढ़ी को उससे परिचित कराने का काम डॉ. खरे ने इस कृति के माध्यम से करने का सत्प्रयास किया है।

लेखक ने 'रामचरितमानस पर गीता के प्रभाव' शीर्षक आलेख में गोस्वामी तुलसीदास की 'नाना पुराण निगमागम' सम्मत, पुष्टि के साथ छहों शास्त्र सब ग्रंथन को रस की भावना को उद्धरित किया है। विश्व समादृत श्रीमद्भगवद्गीता के अनेक श्लोकों को संत तुलसीदास ने मानस में अपने ढंग से उद्धधृत किया है। त्रेता के श्रीराम और द्वापर के श्रीकृष्ण दोनों ही धर्म की स्थापना और दुष्टों के संहार हेतु अवतरित हुए, आलोच्य पुस्तक में दी गई इस साम्य की व्याख्या पाठकों प्रभावित ही नहीं आनंदित भी करेगी। राम जन्म की अनेक चित्र–विचित्र मान्यताओं की व्याख्या

ग्रंथों के विषद् अध्ययन उपरांत ही संभव है।

मानस में गुरु–शिष्य संबंधों को स्पष्ट करते हुए डॉ. खरे ने स्कन्द पुराण अनुसार गुरु को अज्ञान के अंधकार से मुक्त कर ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करनेवाला निरूपित किया है। लेखक के अनुसार भारत में जीवन जीने की कला सिखाने वाली गुरु–शिष्य परंपरा संस्कृत साहित्य काल से लेकर हिन्दी साहित्य के मध्यकाल तक विद्यमान रही है। आधुनिक काल में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से उस परम्परा का स्थान शिक्षक और शिक्षार्थी ने ले लिया है जो मात्र जीवनयापन के साधन में बदल गई है। लेखक ने इस बदलाव पर जो चिंता व्यक्त की है उस पर राज और समाज को सोचने–विचारने और सुधार की आवश्यकता हैं। लेखक एक सुकवि भी थे, इसलिए उन्होंने ''क्या कर लूँ मैं इनको प्रणाम'' शीर्षक कविता के माध्यम से अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए लिखा है कि विद्या के इन ठेकेदारों को कैसे प्रणाम कर सकते हैं जिन्होंने पश्चिमी प्रभाव में आकर आचरण, सभ्यता और संस्कृति का नाश किया है।

'मानस में वृद्ध विमर्श' नामक सातवें खण्ड में लेखक ने पाँच प्रकार के वृद्ध बताए हैं, धन–वृद्ध, बल–वृद्ध, आयु–वृद्ध, कर्म–वृद्ध और ज्ञान–वृद्ध। इन पाँचों प्रकार के वृद्धों का सम्मान करना चाहिए। सामान्य रूप से आयु वृद्ध को ही वृद्ध माना गया है। लेखक ने मानस के विभिन्न काण्डों में पाँचों प्रकार के वृद्धों और उनकी विशेषताओं को उदाहरण सहित समझाया है। धन–वृद्ध में रावण, बल–वृद्ध में जटायु, जामवंत और हनुमान जी, आयु–वृद्ध में जटायु संपाति और जामवंत, कर्म–वृद्ध में नल–नील और ज्ञान–वृद्ध में माल्यवंत और जामवंत हैं। रावण और मेघनाद ने वृद्धों का अपमान कर पराजय का फल पाया और श्रीराम ने वृद्धों का सम्मान कर विजय प्राप्त की। वर्तमान युग में लगभग पचास वर्षों से वृद्धों का आदर क्रमशः घटता ही जा रहा है।

आठवें अध्याय में लेखक ने ढोल, गँवार शूद्र, पशु, नारी विषय पर चर्चा करते हुए लिखा है कि कुछ समय से विशेष मानसिकता से ग्रस्त नेता औा बुद्धिजीवी श्रीराम, संत तुलसीदास और रामचरित मानस को दलित और नारी विरोधी सिद्ध करने के लिए संबंधित चौपाई का अनर्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। जिन्हें न तो साहित्यिक भाषा का न ही शब्दार्थ और न ही शब्द–शक्ति का उचित ज्ञान है, वे ही अशुद्ध अर्थ निकालकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे। कौन–सी बात कहाँ, किसके द्वारा, किस संदर्भ में कही गई है यह जानना भी आवश्यक होता है। लेखक ने तर्क सहित इस विवाद का खंडन किया है।

नौवें अध्याय में लेखक ने मानस में पर्यावरणीय

चिंतन पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। आज पर्यावरण प्रदूषण अंतरराष्ट्रीय स्तर की समस्या है। जल, वायु, ध्वनि और पृथ्वी भयावह रूप से प्रदूषित हो रहे हैं। यदि इनका समय रहते संरक्षण नहीं किया गया तो प्रकृति और प्राणी जगत नष्ट हो जाएगा। मानस में कुछ विशेष वाटिकाओं के उल्लेख से प्रकृति–प्रेम और उसके संरक्षण के प्रति प्राचीन व्यवस्थाओं को व्यक्त किया गया है। तत्कालीन समाज और श्रीराम, राजा जनक यहाँ तक की रावण भी प्रकृति के संरक्षण के प्रति सचेत हैं। लेखक का अभिमत है कि आज विज्ञान की उन्नत तकनीकों के साथ–साथ यदि मानस में वर्णित उपयोगी प्रकृति चिंतन को शासन द्वारा अपनाया जाए तो पर्यावरणीय सरोकारों से जुड़ी समस्याओं का समाधान संभव है।

पूर्व व्याख्याता, राजमहल के सामने टीकमगढ़ म.प्र. 472001 मो.नं. 99937 50271

आलेख

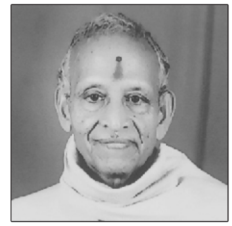

डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त

एहि तन कर फल विषय न भाई

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।।

रा.च.मानस 7–43–1

प्राणियों की चौरासी लाख योनियाँ विश्रुत ही हैं। इनमें 'मानव योनि'' श्रेष्ठ तथा मुक्ति का पाथेय है। इसीलिए यह परमात्मा को सबसे अधिक प्रिय है। यथोक्त है कि –

मम माया संभव संसारा, जीव चराचर विविध प्रकारा।
सब मम प्रिय सब मम उपजाये, सबते अधिक मनुजमोहि भाये।।

रा.च.मानस 7–85ख,3,4

श्री रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने मनुष्य को सही मानव बनने के समन्वय या सूक्त पिरोये हैं। इस सुकृति के प्रत्येक काण्ड में मनुष्य को मानवता के संरक्षण के प्रति आगाह किया गया है। गोस्वामी जी ने सन्मार्ग के विपरीत चलने वाले मनुष्य को दानव या निशिचर कहकर सम्बोधित किया है। यथा –

मानहिं मात पिता नहिं देवा, साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।
जिन्हके ये आचरन भवानी, ते जानेहू निसिचर सब प्रानी।।

रा.च.मानस 1–183 –2,3

रामचरित मानस के बालकाण्ड में ही अच्छे एवं मानवीय संस्कारों की सन्निधि हेतु शोभून सूक्तियाँ पिरोई गई हैं। यथा –

मातु पिता, गुरु प्रभु कै वानी, बिनहिं विचार करिअ शुभ जानी।।

रा.च.मानस 1–76–3

संत संगत मुद मंगल भूला।

रा.च.मानस 1–2–8

को न कुसँगति पाइ नसाई।

रा.च.मानस 2–23–8

मन क्रम वचन छाड़ि चतुराई,
भजत कृपा करिहहिं रघुराई।
रा.च.मानस 1—99—5

प्रातकाल उठि के रघुनाथा,
मात पिता गुरु नावहिं माथा।।
रा.च.मानस 1—204—7

इस कृति के अयोध्याकाण्ड की तो एक अर्धाली मात्र विश्व के मानव — समाज को सही मानव बनाने का श्रेष्ठ मन्त्र है। बस इसी एक श्रेष्ठ सदुक्ति को आत्मसात करने से ही मानव का श्रेष्ठ उद्वार सहज सम्भव है। वह उक्ति या सूक्ति यह है कि —

"धर्म न दूसर सत्य समाना"
रा.च.मानस 2—94—5

श्रीरामचरित मानस के प्रत्येक काण्ड में मानव के सही मानव बनने एवं विषयासक्ति विहीन बनने के शोभन निर्देश हैं। अरण्यकाण्ड में तो मानो मनुष्य या पूरे मानव समाज को अनासक्ति, कर्तव्य पालन, जीव जगत्, विद्या—अविद्या, मानवता के रक्षण की सीख एवं सन्मार्ग पर चलने की जो मंत्रम् है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ उल्लिखित एक ही अर्धाली मानव को सन्मार्गी और जीवन्त रहने को पर्याप्त है। यथा —

इमि कुपंथ पग देत खगेसा,
रह न तेज तन बुधिबल लेसा।।
रा.च.मा. 3—27—1

श्रीरामचरित मानस के किष्किंधा और सुन्दर काण्ड में भी विषयासूक्ति के उन्माद और प्रमाद को परम हेय एवं तिरस्कार योग्य कहा गया है। 'विषय' षड्विकार अर्थात काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर हैं। इनमें आकृष्ट हुआ मनुज अहंकार से उन्नत हुआ अपनी बुद्धि के विवेक को पूर्णतः खो देता है। विषयासक्ति में अपने कर्तव्य को विस्तृत कर राजा सुग्रीव अपना ज्ञान तथा अपनी मन, वाणी और कर्म की एकता को ही भूल चुका था। श्री हनुमानजी द्वारा उसका विवेक जगाये जाने पर उसने अपनी भूल स्वीकार करते हुये विषयासक्ति की बलबली अहंता के विषय में लक्ष्मण जी से कहा था कि —

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं,
मुनि मन मोह करइ छ्न माहीं।
बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी,
मैं पावंर पसु कपि अति कामी।।
रा.च.म. 4—19—7, 4.20—3

विषयवासना से दूर होना बड़ा कठिन है, तथापि जब व्यक्ति अपना अहंकार छोड़ता है तब राम की कृपा प्राप्त कर लेता है और फिर उसकी विषयासक्ति तिरोहित हो जाती है। यथोक्ता है कि —

अतिसय प्रबल देव तब माया,
छूटइ राम करइ जौं दाया।
रा.च.मा. 4—20—2

श्री रामचरित मानस के सुन्दर काण्ड में विषयासक्त राक्षसराज रावण को विषय वासना से बचने के लिए एवं मानव की कोटि में प्रगण्य होने के लिये बहुत समझाया गया। यथोक्त है कि—

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरिहि भजहु भजहि जेहि संत।।
रा.च.मा. 5—38

मानस की लंकाकाण्ड तो अहंता रूप विषय वयारि में बह रहे रावण राजा की वह आधार भूमि है, जिसमें वह विषयों की आसक्ति के मद में निर्द्वन्द्व बहता जा रहा है। वह अपनी परम

हितैषिणी रानी मन्दोदरी की भी विषयासक्ति के मद में उपेक्षा और तिरस्कार करता है। वह अपने परम हितैषी अंगद की सुन्दर सीख को अस्वीकार कर देता है। अंगद ने विषयासक्ति के मद में रावण को हितकारी सलाह दी थी कि –

नृप अभिमान मोह बस किंवा।
हरि आनेहु सीता जगदम्बा।।

रा.च.मा. 6–19–5

लेकिन विषय की वयारि तो बडी भयंकर होती है। बिना विनय, बिना विवेक और बिना भगवत्कृपा के विषयासक्ति का तिरोहित होना बड़ा ही कठिन होता है।

श्रीरामचरितमानस का उत्तरकाण्ड मानव को विषयासक्ति से दूर कर उसे सही मानव बनाने का सुन्दर, शोभन एवं सुनीति पूर्ण संविधान प्रस्तुत करता है। रंक से लेकर राजा तक सभी मानवों को एवं सभी जातियों, सब धर्मों सम्प्रदाओं के लोगों को स्वतंत्रता तथा समानता का अधिकार हो तथा सभी जन अपने अपने कर्तव्यपालन में निरत हों, तब विषय वयारि मानव को आसक्त कर ही नहीं सकती। यथोल्लेख है कि –

वरनाश्रम निज निज धरम,
निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं,
नहि भयशोक न रोग।।

रा.च.मा. 7–20

उत्तरकाण्ड में जन समाज को आग्रह किया गया है कि यह मानव तन बड़े पुण्यों से प्राप्त होता है। इसका यह वैशिष्ट्य है कि यह मोक्ष का परम साधन है। यथोल्लेख है कि –

बड़े भाग मानुष तन पावा,
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा,
पाइ न जेहि परलोक संवारा।।
एहितन कर फल विषय न भाई,
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई।
नर तन पाइ विषय मन देही,
पलटि सुधा ते सथ विष लेही।

रा.च.मा.. –42–7,8 7743–1,2

आखिर, बुरी तरह से जकड़ने वााले विषयों में मन न जाये, इस के लिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने निःस्पृह रूप से भगवद्–भक्ति अपनाने का साधन निरूपित किया है। यथा –

जौ परलोक यहाँ सुख चहहू,
सुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहू।
सुलभ सुखद मारग यह भाई,
भगति मोारि पुरान श्रुति गाई।।

रा.च.मा. 7–44–1,2

श्रीरामचरितमानस में परम शांतप्रद 'संतोष' धन को श्रेष्ठ मान्य किया है। समस्त विकृतियों और द्वन्द्वों से दूर रहने में परम सुख प्राप्ति कही गई है। यथा –

सरल सुभाव न मन कुटिलाइई,
जया लाभ संतोष सदाई।
बैर न विग्रह आस न त्रासा,
सुखमय ताहि सदा सब आसा।।

रा.च.मा. 7–45–2 एवं 7–45 –5

मानव को सुख, शान्ति, संतोष आदि सद्ग्रंथों की प्रदायिनी निर्विकारिता है, धर्म शीलता है एवं विरक्ति है। यथोक है कि –

धर्मशील विरक्त अरुज्ञानी,
जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी।

रा.च.मा. 7–53–1

वस्तुतः माया के बन्धन से मोह, मनोज, अविवेक आदि विकार उत्पन्न होते हैं। यथा निरूपित है कि –

माया कृत गुनदोष अनेका,
मोह मनोज आदि अविवेका।

रा.च.मा. 7–56–2

अन्य भी कथ्य है –

सुनि नारदहिं लागि अति दाया,
सुनु खग प्रबल राम कै माया।
जो ग्यानिंह कर चित अपहरई,
बरिआई विमोह बस करई।

रा.च.मा. 7–58–4,5

उक्त माया के निदान और परिहार के लिये गोस्वामी तुलसीदासजी ने सत्संग को अतिशय श्रेष्ठ निरूपित किया है। यथा

तबहिं होइ सब संसय भंगा,
जब बहुकाल करिअ सतसंगा।।

रा.च.मा. 7–60–4

अन्य भी कथ्य है कि –

विनु सत्संग न हरि कथा,
तेहि बिन मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद
होइ न दृढ़ अनुराग।।

रा.च.मा. 7–61

माथा के महत्वपूर्ण स्तम्भ शूल की भांति चुभने वाले मोह और अभिमान हैं। यथा निरूपित है कि

सकल सोकदायक अभिमाना

रा.च.मा. 7–74

मोह मूल प्रद शूलप्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपा सिन्धु भगवान्।।

रा.च.मा. 5–223

होइहि कीन्ह कबहुं अभिमाना,
सो खोबे चह कृपा निधाना।।

रा.च.मा. 7–61

मोह न अंध कीन्ह केहि केही,
को जग काम नचाव न जेही।।

रा.च.मा. 7–69ख–7

तुस्ना केहि न कीन्ह बौराहा,
केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा।।

रा.च.मा. 7–69ख –8

काम क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर मानव मात्र को अविवेकी बनाकर उसके हर एक इन्द्रिय द्वार से उसके भीतर प्रवेश कर उसे अत्यंत कष्टि देते है। दृष्टव्य है कि –

इंद्री द्वार झरोखा नाना,
जहं तहं सुर बैठे करि थाना।
आवत देखहिं विषय बयारी,
ते हठि देहि कपाट उघारी।।

रा.च.मा. 7–117घ–11,2

निष्कर्ष यह है कि श्रेष्ठ मनुष्य योनि में अवतरित हुये मानव मात्र का यह कर्तव्य बनता है कि वह मानव धर्म अपनाये, सदाचरण के पथ पर ही अग्रसर हो।

श्रीमती लक्ष्मी गुप्ता भवन, उद्योग विभाग के पास, सिविल लाइन्स,
दतिया (म.प्र.) 475661 मो. 9826249448

भास्कर समूह के शलाका पुरुष स्व.श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल की पुण्य स्मृति

मानस भवन में श्रीमद्भागवत कथा संपन्न

मानस मर्मज्ञ भागवताचार्य : श्री श्यामजी मनावत

15/09/2025 से 21/09/2025 तक

तुलसी मानस प्रतिष्ठान मानस भवन एवं अभिव्यक्ति संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में भास्कर समूह के शलाका पुरुष स्व.श्री रमेशचन्द्र अग्रवाल की पुण्य स्मृति में पितृपक्ष के पावन अवसर पर मानस भवन में सप्त दिवसीय श्रीमद्भागवतकथा के अवसर पर भागवताचार्य एवं मानस मर्मज्ञ परमश्रद्धेय श्री श्यामजी मनावत ने व्यासपीठ से कथा प्रसंग में श्रुति व शास्त्र की महिमा की व्याख्या करते हुए कहा कि संतों के श्रीमुख से वेद, उपनिषद, पुराणों की कथाऐं जो ऋषि मुनियों द्वारा रची गयी है वे सत्संग के माध्यम से सुनी और समझी जाती है। इन कथाओं में जीवन के व्यावहारिक सूत्र निहित है।

आपने कहा कि सत्संग ईश्वर कृपा से प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति के लिये हमारे धर्मशास्त्रों में श्रवण को प्रथम भक्ति कहा है। लेकिन यह प्रथम भक्ति अन्ततः हमें पूर्ण भक्ति की ओर ले जाती है। आपने संत्सग की महिमा बताते हुए कहा कि जप, तप, दान, व्रत, उपवास, तीर्थाटन का अपना महत्व है लेकिन श्रवण का महत्व सर्वोपरि इसलिये है कि सुनने मात्र से व्यक्ति के ह्रदय में सद्‌गुणों का संचार हो जाता है और यही सद्‌गुण हमें सद्‌गुरु से जोड़ देते है। आपने सती और पार्वती प्रसंग का तुलनात्मक विवेचन करते हुए कहा कि सतीजी ईश्वर के संबंध में तर्क करती है जबकि पार्वतीजी साक्षात श्रद्धा है। उनमें श्रद्धा के साथ विश्वास है। अर्थात जब हमारे ह्रदय मे श्रद्धा–विश्वास का उदय होता है तभी संतजन कहते है कि हम ईश्वर की अनुभूति कर सकते है।

द्वितीय दिवस श्रीश्यामजी ने व्यासपीठ से कथा प्रसंग में कहा कि जब जीव रूपी लक्ष्मण मूर्छित होता हैं तो संजीवनी द्रोणागिरी के पास मिलती है परंतु जब मन मूर्छित होने लगे, संजीवनी गुरु के पास मिलती है। इसलिए लक्ष्मण जी के लिए संजीवनी द्रोणागिरी से लाई गई परंतु परीक्षित जी के लिए संजीवनी सुखदेव भगवान के पास प्राप्त हुई। सत्संग से बड़ी कोई संजीवनी नहीं। मन में विकार आने लगे तो उसका उपचार केवल सत्संग ही है। जब तक्षक विष लेकर आने लगे तो अमृत सद्‌गुरु के पास ही मिलता है इसलिए परीक्षित शुकदेव मुनि की शरण में गए। पंडितजी ने कहा कि महाराज परीक्षित को क्रोध आ गया और उन्होंने गुरु के गले में सर्प पर डाल दिया। सर्प का अर्थ जहर है। व्यक्ति क्रोध में जहर ही उगलता है इसलिए जब जीवन में क्रोध आए तो उसे बोध से शांत करना चाहिए और बोध जागृत करता है सत्संग।

तृतीय दिवस मनावत जी ने व्यासपीठ से भक्तराज ध्रुव के चरित्र का प्रसंग सुनाते हुए कहा कि जिन भगवान को दादा महाराज मनु ने अपनी चौथी अवस्था में प्राप्त किया उन्ही भगवान को उनके पोते भक्तराज ध्रुव ने केवल 5 वर्ष की अवस्था में प्राप्त कर लिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि भक्ति के लिए ना आयु की आवश्यकता है और ना ही अनुभव की। प्रभु प्राप्ति के लिए केवल आवश्यक है आत्मसमर्पण की । पिता से अपमान के बाद ध्रुव जी के जीवन में प्रभु के लिए आत्मसमर्पण पैदा हो गया। पंडितजी ने कहा कि भक्तराज ध्रुव जी का चरित्र इस बात का प्रमाण है कि यदि व्यक्ति अपनी संतान को प्रेरणा दे, प्रार्थना दे, पुरुषार्थ दे और उचित परामर्श दें तो वह पुत्र परमात्मा को भी उपलब्ध हो सकता है। ध्रुव जी के जीवन में प्रतिशोध पैदा हो गया था परंतु उनकी मां ने उसे प्रार्थना में बदल दिया। अपमान को उन्होंने उत्थान में बदल दिया। जब नंदबाबा के घर आनंद हो रहा था तब वसुदेवजी और देवकीजी कारागृह में भी परमानंद का अनुभव कर रहे थे। क्योंकि नंदजी को तो पुत्र प्राप्त हुआ था परंतु वसुदेव देवकी जी ने परमात्मा के चतुर्भुज रूप के दर्शन किए थे। जीवन में जब पुत्र मिले तो आनंद है परन्तु परमात्मा के निज स्वरूप का दर्शन करने को मिले तो समझना परमानंद है। यदि जीवन में ईश्वर मिल जाए तो व्यक्ति कारागृह में रहकर भी आनंदित हो सकता है।

महाराज श्री ने श्रीकृष्ण जन्मोत्सव का प्रसंग सुनाते हुए कहा कि रावण इत्यादि राक्षस जो अधर्म के पक्ष में थे इन्हें परास्त करने के लिए भगवान राम शुक्ल पक्ष यानी धर्म के पक्ष में प्रकट हुए परंतु भगवान श्री वासुदेव कृष्ण पक्ष में क्यों प्रकट हुए ? इसका कारण यह है कि भगवान श्री कृष्ण के सामने महाभारत के युद्ध में जो बड़े–बड़े योद्धा थे वह स्वयं तो उज्ज्वल चरित्र के थे परंतु वे जिस पक्ष में खड़े थे वह अधर्म का पक्ष था। इसलिए उजले पक्ष के वाले व्यक्ति भी जब धुंधले पक्ष में जाकर खड़ा हो जाए तो उसे पराजित करने के लिए भगवान कृष्ण को भी कृष्ण पक्ष में जन्म लेना पड़ा।

गोवर्धन–प्रसंग पर भाव भक्ति पूर्ण व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि भारतवर्ष के पूर्व में श्री जगन्नाथ जी विराजमान है। पश्चिम में श्री द्वारकानाथ विराजमान है। उत्तर में ब्रदीनाथ और दक्षिण में श्रीरंगनाथ विराजमान है। परन्तु मध्य ब्रह्म स्थान पर श्री गोवर्धननाथ जी विराजमान है। पॉच नाथ जिस भूमि पर विराजमान हो वह कभी अनाथ ही नहीं हो सकता। भगवान ब्रदीनाथ तप की भूमि है। वे सन्यास आश्रम के प्रतीक हैं। जगन्नाथ के भात को जगत पसारे हाथ। श्री जगन्नाथ जी स्वयं अन्नपूर्णा और जगत के पोषक है। श्री रंगनाथजी जगत के रक्षक हैं। परन्तु श्री गोवर्धननाथ जी शरणागत को समस्त आनन्द से परिपूर्ण कर देते है।

श्रीकृष्ण रूक्मिणी विवाह प्रसंग पर भाव भक्ति पूर्ण व्याख्या करते हुए कहा कि चंदेरी नरेश दम घोष का बेटा शिशुपाल भरी सभा में भगवान श्री कृष्ण को अपशब्द कहता है। वह महाराज युधिष्ठिर की सभा में वासुदेव श्री कृष्ण की निंदा करता है। जबकि विदर्भ की राजकुमारी रुक्मणी भगवान को प्राप्त करने की वंदना करती है। भगवान वंदना करने वाली रुक्मणी को स्वीकार करते हैं जबकि निंदा करने वाले शिशुपाल का वध करते हैं ।यदि भगवान का होना चाहते हो तो

नारायण की निंदा नहीं नारायण की स्तुति की जानी चाहिए ।भगवान की स्तुति से जीवन में समर्पण पैदा होता है जबकि ईश्वर की निंदा करने से जीवन में संघर्ष पैदा होता है।

समापन के अवसर पर मनावत जी ने कहा कि अनाम और निष्काम भक्ति का नाम है सुदामा। क्योंकि सुदामा जी का नाम भगवान वेद व्यास ने भागवत में नहीं लिखा। वह अनाम भक्त है। सुदामा जैसा व्यक्ति नाम नहीं हो सकता वह तो संपूर्ण व्यक्तित्व ही है। सुदामा जी ने भगवान से कुछ नहीं मांगा क्योंकि वह निष्कामता की पराकाष्ठा है। इसलिए हम कह सकते हैं कि अनाम और निष्काम भक्ति का नाम है।

श्रीमद्भागवतकथा में भागवत जी की पूजा –अर्चना एवं महाआरती के लिये विभिन्न दिवस यजमान में श्री अरूण गुप्ता श्रीमती श्रद्धा गुप्ता, श्री माधव सिंह दांगी एवं श्रीमती नीता दांगी, श्री प्रहलाददास मंगल एवं श्रीमती लक्ष्मीदास मंगल, श्री प्रमोद अग्रवाल एवं श्रीमती कविता अग्रवाल, श्री महेश दुबे एवं श्रीमती शीला दुबे, श्रीमती रमा बंग परिवार एचं श्री गोपाल सिंह राजपूत एवं श्रीमती छाया राजपूत।

कथा प्रसंग में विभिन्न दिवस पधारे रामानुरागी श्रोताओं में श्री रघुनंदन शर्मा कार्याध्यक्ष, श्रीमती शांति देवी शर्मा, सचिव श्री कैलाश जोशी, श्रीमती मालती जोशी, श्री सुधीर अग्रवाल दैनिक भास्कर समूह अध्यक्ष, श्री मनमोहन अग्रवाल अध्यक्ष, भोपाल मेला उत्सव समिति, श्री विजय अग्रवाल कोषाध्यक्ष, श्री राजेन्द्र शर्मा संयोजक एवं स्वदेश ज्योति पत्र समूह के अध्यक्ष, श्री प्रभुदयाल मिश्र, प्रधान संपादक तुलसी मानस भारती, श्री देवेन्द्र कुमार रावत संपादक तुलसी मानस भारती, श्री संजीव पुरी, संध्या पुरी, प्रहलाददास जी मंगल, डॉ. राजेश श्रीवास्तव, श्रीमती जानकी शुक्ला, श्रीमती सुशीला शुक्ला, सुश्री शारदा राठौर, श्री गोपाल सिंह राजपूत, श्री बी.के.सांघी, श्री महेश सक्सेना, श्री अशोक भट्ट, श्री महेन्द्र निगम, श्री मनीष भट्ट, श्री शेर सिंह चौहान, श्री संदीप पाठक, श्री प्रदीप पाठक एवं भारी संख्या में श्रोतागण उपस्थित रहे। समापन दिवस पर महाआरती के बाद महाप्रसादी का आयोजन भी किया गया। विभिन्न दिवस कथा के बाद आभार श्री माधव सिंह दांगी द्वारा किया गया।

संपादक

डा.गंगाप्रसाद गुप्त "बरसैंया" द्वारा "तुलसी मानस श्रीराम संग्रहालय" के लिए गोस्वामी तुलसी दास के समकालीन श्री विक्रम बिलगैंया द्वारा संवत् 1664 में लिखित "सुदामा चरित" की हस्तलिखित पांडुलिपि सहित 80 महत्वपूर्ण पुस्तकें भेंट कीं। प्रतिष्ठान उनकी इस उदारता के लिए उन्हें प्रभूत धन्यवाद ज्ञापित करता है ।

उपनिषद् और गीता तत्त्व चिंतन सप्ताह

प्रवचनकर्त्ता : परमपूज्य स्वामी अनुभवानन्दजी सरस्वती

दिनांक 9 से 14 अक्टूबर 2025 तक

स्थान : पं. श्रीरामकिंकर उपाध्याय सभागृह,
तुलसी मानस प्रतिष्ठान, मानस भवन, भोपाल

समय : प्रातः 8:30 से 9:30 बजे तक एवं सायं 7 से 8 बजे तक

पूर्व वर्षों की भांति **महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्** और **तुलसी मानस प्रतिष्ठान**
के संयुक्त तत्वावधान में विश्वविख्यात वेदान्त मनीषी
स्वामी अनुभवानन्दजी सरस्वती
के सान्निध्य में
दिनांक 9 से 14 अक्टूबर 2025 तक
श्रीरामकिंकर उपाध्याय सभागृह, तुलसी मानस प्रतिष्ठान में
प्रातः और संध्याकालीन तत्त्व चिंतन विचार सत्संग सत्र होगा।
प्रातःकालीन सत्र में वेदांत विचार एवं
संध्याकालीन सत्र में सनत सुजातीय ग्रंथ
पर स्वामीजी के प्रवचन होंगे।
इस अवसर पर महर्षि पाणिनि संस्कृत विश्वविद्यालय उज्जैन के पूर्व कुलपति
डॉ. मोहन गुप्त
को ***अगस्त्य अलंकरण*** से
दिनांक 12 अक्टूबर, 2025 को संविभूषित किया जायेगा।
सभी श्रद्धालु और विचारवान देवियाँ और सज्जन वृन्द सादर आमंत्रित हैं।

निवेदक
प्रभुदयाल मिश्र
अध्यक्ष
महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्

सायं आरती करते हुए कार्याध्यक्ष, पूर्व केबीनेट मंत्री श्री पी.सी. शर्मा अन्य सदस्यगण

आरती करते हुए सचिव श्री कैलाश जोशी,
श्रीमती एवं श्री प्रहलाद दास मंगल

आरती करते हुए श्रीमती एवं श्री महेश दुबे, निदेशक
एवं अन्य सदस्यगण

आरती करते हुए दैनिक भास्कर प्रमुख श्री सुधीर अग्रवाल एवं
कार्याध्यक्ष, सचिव एवं अन्य सदस्यगण मानस भवन

आरती करते हुए श्री मनीष भट्ट, श्री अशोक भट्ट एवं श्री संजीव पुरी एवं अन्य श्रद्धालुगण

सुधी श्रोतागण

स्वामी-तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश, प्रकाशक श्री रघुनंदन शर्मा और मुद्रक श्री राधिका प्रकाशन प्रा. लि., 26-ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, ज़ोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल 462011 से मुद्रित और तुलसी मानस प्रतिष्ठान मध्यप्रदेश, मानस भवन, भोपाल से प्रकाशित।
प्रधान संपादक : प्रभुदयाल मिश्र एवं संपादक : देवेन्द्र कुमार रावत